

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

सामायिक सूत्र

१—नमस्कार मन्त्र

णमो अरिहंताणं। णमो सिद्धाणं। णमो आयरियाणं। णमो उवज्झायाणं। णमो लोए सव्वसाहूणं।

एसो पंच णमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाण च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

(भगवती सूत्र मङ्गलाचरण) (कल्पसूत्र मङ्गलाचरण)

२—गुरुवन्दना-तिक्खुत्तो का पाठ।

तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं (करेमि) वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि + मत्थएण वंदामि। (रायप्पसेणी सूत्र ८)

३—इरियावहियं (इच्छाकारेणं) का पाठ

इच्छाकारेणं संदिसह भगवं! इरियावहियं पडिक्कमामि, इच्छं ※ इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे,

---

+ रायप्पसेणी सूत्र में 'मत्थएण वंदामि' यह पाठ नहीं है। किन्तु परम्परा की धारणा और प्रचलित परिपाटी के अनुसार यह पाठ यहाँ दिया गया है।

※ 'इच्छामि मे मिच्छामि दुक्कडं' तक का पाठ आवश्यक में है।

पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा उत्तिंग पणग दग मट्टी मक्कडा संताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

(हरिभद्रीयावश्यक पृ० ५७२)

४—तस्स उत्तरी का पाठ

तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहिकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माण निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं। अण्णत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं, एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो, जाव अरिहंताणं भगवंताणं णमुक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेण झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि।

(हरिभद्रीयावश्यक पृ० ७७८)

५—लोगस्स का पाठ

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ॥ १ ॥
उसभमजियं च वन्दे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वन्दे ॥ २ ॥
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयलसिज्जंसवासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥ ३ ॥

कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे, मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥ ४ ॥
एवं मए अभिथुआ, विहूयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥ ५ ॥
कित्तियवंदियमहिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥ ६ ॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ७ ॥

(हरिभद्रीयावश्यक पृ० ४९३-५०९)

६—करेमि भंते का पाठ

करेमि भंते ! सामाइयं, सावज्जं, जोगं पच्चक्खामि जावनियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं न करेमि, न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा तस्स भंते। पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥ (हरिभद्रीयावश्यक पृ० ४५४)

७—णमोत्थुणं का पाठ

णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगणाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं दीवो ताणं सरण गई पइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं जिणाणं

जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाण वोहयाण मुत्ताणं मोअगाण, सव्वण्णूणं, सव्वदरिसीण, सिवमयल मरुअ मणंत मक्खय मव्वावाह मपुणराविर्त्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जिअभयाण ॥ (औपपातिक सूत्र १२) (कल्पसूत्र शक्रस्तव)

८—सामायिक पारने का पाठ

एयस्स नवमस्स सामाइयवयस्स पंच अइयारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तंजहा ते आलोउं-मणदुप्पणिहाणे, वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे, सामाइयस्स सइ अकरणया, सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ (हरिभद्रीयावश्यक पृ० ८३१)

सामाइयं सम्मं काएण न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक मे दस मन के, दस वचन के, वारह काया के इन कुल वत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक मे * स्त्रीकथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा, इन चार कथाओं मे से कोई कथा की हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक में आहार संज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, इन चार संज्ञाओं मे से किसी संज्ञा का सेवन किया हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार जानते अजानते मन वचन काया से कोई दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

* श्राविकाएँ स्त्री कथा के स्थान पर पुरुष कथा कहें।

सामायिक व्रत विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया, विधि में कोई अविधि हुई हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक का पाठ बोलने मे काना, मात्रा, अनुस्वार, पद, अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ, न्यूनाधिक, विपरीत पढ़ने में आया हो तो अनन्त सिद्ध केवली भगवान् की साक्षी से तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

सामायिक लेने की विधि

सर्व प्रथम स्थान, आसन, पूँजनी, मुखवस्त्रिका आदि की पडिलेहणा करना। फिर यत्ना पूर्वक स्थान पूँज कर आसन बिछाना। बाद में आसन छोड़ कर पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुंह कर के दोनों हाथ जोड़ कर पंचाग नमा कर 'तिक्खुत्तो' के पाठ से तीन बार विधि पूर्वक वंदना करना और श्री सीमंधर स्वामी या अपने धर्माचार्यजी (गुरुदेव) की आज्ञा लेकर 'नमस्कार मंत्र', 'इच्छा कारेण' और 'तस्सउत्तरी' का पाठ बोल कर काउस्सग्ग करना। काउस्सग्ग मे 'इच्छाकारेण' का पाठ मन में कहना। पाठ के अन्त में 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' के स्थान पर 'तस्स आलोउ' कहना और 'णमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पारना। बादमें 'नमस्कार मंत्र', 'ध्यान का पाठ' (काउस्सग्ग मे आर्त्तध्यान रौद्रध्यान ध्याया हो, धर्मध्यान न ध्याया हो, काउस्सग्ग मे मन वचन काया चलित हुए हों तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं) और 'लोगस्स' का पाठ कहना। फिर 'करेमि भन्ते' के पाठ से सामायिक लेना। 'करेमि भंते' के पाठ मे जहां 'जाव नियमं' शब्द आता है वहां जितनी * सामायिक लेनी हो उतनी सामायिक लेकर आगे का पाठ

---

*सामायिक का काल एक मुहूर्त यानी अड़तालीस मिनिटका होता है।

समाप्त करना। बाद मे नीचे बैठ कर बायाँ घुटना खड़ा रख कर दो बार 'णमोत्थुणं' का पाठ बोलना। दूसरी बार णमोत्थुणं' का पाठ बोलने के समय "ठाणं संपत्ताणं' के बदले 'ठाण संपाविउ कामाण' बोलना।

सामायिक में नया ज्ञान सीखना सीखे हुए ज्ञान, थोकड़ा, बोल आदि चितारना, स्वाध्याय करना, परमात्मा के स्तवन, प्रार्थना, स्तोत्र, स्तुति आदि बोलना, माला फेरना आदि ज्ञान ध्यान करना, आशय यह है कि सामायिक का काल प्रमाद रहित हो कर ज्ञान ध्यान चिन्तन मनन मे बिताना चाहिए। सन्त मुनिराज विराजते हों तो उनकी ओर पीठ करके नहीं बैठना चाहिए। स्वाध्याय, व्याख्यान या उपदेश दे रहे हों तो उसमे उपयोग रखना चाहिए। सामायिक मे विकार जनक उपकरण नहीं रखना चाहिए। सामायिक के ३२ दोपों का सेवन न करना चाहिए।

सामायिक पारने की विधि

सामायिक पारने के समय 'नमस्कार मंत्र', इच्छाकारेणं' और 'तस्स उत्तरी' का पाठ बोल कर काउस्सग्ग करना। काउस्सग्ग मे दो बार 'लोगस्स' का पाठ मन में कहना और 'णमो अरिहंताणं' कह कर काउस्सग्ग पारना। फिर 'नमस्कार मंत्र', 'ध्यान का पाठ' और 'लोगस्स' का पाठ प्रगट कहना। बाद मे बायाँ घुटना खडा रख कर ऊपर लिखे अनुसार दो बार 'णमोत्थुण' का पाठ बोलना। फिर 'एयस्स नवमस्स' आदि सामायिक पारने का पूरा पाठ बोल कर अन्त मे तीन बार 'नमस्कार मंत्र' गिन कर सामायिक पारना।

॥ इति सामायिक सूत्र समाप्तम्॥

४

बोल चौथा : इन्द्रिय पांच

१ श्रोत्र इन्द्रिय
२ चक्षुष् इन्द्रिय
३ घ्राण इन्द्रिय
४ रसन इन्द्रिय
५ स्पर्शन इन्द्रिय

★

५

बोल पाँचवाँ : पर्याप्ति छह

१ आहार पर्याप्ति
२ शरीर पर्याप्ति
३ इन्द्रिय पर्याप्ति
४ श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति
५ भाषा पर्याप्ति
६ मन. पर्याप्ति

★

६

बोल छठा : प्राण दश

१ श्रोत्र इन्द्रिय बल प्राण
२ चक्षुष् इन्द्रिय बल प्राण

३ घ्राण इन्द्रिय बल प्राण
४ रसन इन्द्रिय बल प्राण
५ स्पर्शन इन्द्रिय बल प्राण

६ मनो - बल प्राण
७ वचन बल प्राण
८ काय बल प्राण

९ श्वासोच्छ्वास-बल प्राण
१० आयुष्य बल प्राण

★

७

बोल सातवाँ : शरीर पांच

१ औदारिक शरीर
२ वैक्रिय शरीर
३ आहारक शरीर
४ तैजस शरीर
५ कार्मण शरीर

★

बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के

१ सत्य मनो - योग
२ असत्य मनो - योग
३ मिश्र मनो - योग
४ व्यवहार मनो - योग

चार वचन के

१ सत्य वचन - योग
२ असत्य वचन - योग
३ मिश्र वचन - योग
४ व्यवहार वचन - योग

सात काय के

१ औदारिक काय - योग
२ औदारिक-मिश्र काय - योग
३ वैक्रिय काय - योग
४ वैक्रिय-मिश्र काय - योग
५ आहारक काय - योग
६ आहारक-मिश्र काय - योग
७ कार्मण काय - योग



९

बोल नौवाँ · उपयोग बारह

पाँच ज्ञान

१ मति ज्ञान
२ श्रुत ज्ञान
३ अवधि ज्ञान
४ मन. पर्याय ज्ञान
५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ अवधि अज्ञान (विभंग ज्ञान)

चार दर्शन

१ चक्षुर् दर्शन
२ अचक्षुर् दर्शन
३ अवधि दर्शन
४ केवल दर्शन



बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के

१ सत्य मनो-योग
२ असत्य मनो-योग
३ मिश्र मनो-योग
४ व्यवहार मनो-योग

चार वचन के

१ सत्य वचन-योग
२ असत्य वचन-योग
३ मिश्र वचन-योग
४ व्यवहार वचन-योग

सात काय के

१ औदारिक काय-योग
२ औदारिक-मिश्र काय-योग
३ वैक्रिय काय-योग
४ वैक्रिय-मिश्र काय-योग
५ आहारक काय-योग
६ आहारक-मिश्र काय-योग
७ कार्मण काय-योग



बोल नौवाँ : उपयोग बारह

पाँच ज्ञान

१ मति ज्ञान
२ श्रुत ज्ञान
३ अवधि ज्ञान
४ मन. पर्याय ज्ञान
५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ अवधि अज्ञान (विभग ज्ञान)

चार दर्शन

१ चक्षुर् दर्शन
२ अचक्षुर् दर्शन
३ अवधि दर्शन
४ केवल दर्शन



१०

बोल दशवाँ : कर्म आठ

१	ज्ञानावरण	कर्म
२	दर्शनावरण	कर्म
३	वेदनीय	कर्म
४	मोहनीय	कर्म
५	आयुष्	कर्म
६	नाम	कर्म
७	गोत्र	कर्म
८	अन्तराय	कर्म



११

बोल ग्यारहवाँ : गुण-स्थान चौदह

१	मिथ्या दृष्टि	गुण स्थान
२	सास्वादन सम्यग्दृष्टि	गुण स्थान
३	सम्यग्-मिथ्यादृष्टि	गुण स्थान
४	अविरत सम्यग्दृष्टि	गुण स्थान
५	देश-विरत	गुण स्थान
६	प्रमत्त संयत	गुण स्थान

७ अप्रमत्त सयत गुण स्थान

८ निवृत्ति बादर-सम्पराय गुण स्थान

९ अनिवृत्ति बादर-सम्पराय गुण स्थान

१० सूक्ष्म-सम्पराय गुण स्थान

११ उपशान्त-मोह गुण स्थाम

१२ क्षीण-मोह गुण स्थान

१३ सयोगी केवली गुण स्थान

१४ अयोगी केवली गुण स्थान



१२

बोल बारहवाँ : पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय

१ जीव शब्द २ अजीव शब्द

३ मिश्र शब्द

चक्षुष् इन्द्रिय के पाच विषय

१ कृष्ण वर्ण ३ रक्त वर्ण

२ नील वर्ण ४ पीत वर्ण

५ श्वेत वर्ण

घ्राण इन्द्रिय के दो विषय

१ सुगन्ध २ दुर्गन्ध

रसन इन्द्रिय के पाच विषय

१ अम्ल रस
२ मधुर रस
३ कटु रस
४ कषाय रस
५ तिक्त रस

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

१ शीत स्पर्श
२ उष्ण स्पर्श
३ रूक्ष स्पर्श
४ स्निग्ध स्पर्श
५ लघु स्पर्श
६ गुरु स्पर्श
७ मृदु स्पर्श
८ कर्कश स्पर्श



१३
बोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

१ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व
२ अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व
३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्व
४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्व
५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्व
६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्व

७	ससारमार्ग को मोक्षमार्ग	समझना	मिथ्यात्व
८	मोक्षमार्ग को ससारमार्ग	समझना	मिथ्यात्व
९	मुक्त को अमुक्त	समझना	मिथ्यात्व
१०	अमुक्त को मुक्त	समझना	मिथ्यात्व

★

१४

बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

१	जीव तत्त्व	५	आस्रव तत्त्व
२	अजीव तत्त्व	६	सवर तत्त्व
३	पुण्य तत्त्व	७	निर्जरा तत्त्व
४	पाप तत्त्व	८	बन्ध तत्त्व

९ मोक्ष तत्त्व

जीव तत्त्व के चौदह भेद

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त
२ सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त
३ बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त

रसन इन्द्रिय के पाच विषय

१	अम्ल रस	३	कटु रस
२	मधुर रस	४	कषाय रस

५ तिक्त रस

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय

१	शीत स्पर्श	५	लघु स्पर्श
२	उष्ण स्पर्श	६	गुरु स्पर्श
३	रूक्ष स्पर्श	७	मृदु स्पर्श
४	स्निग्ध स्पर्श	८	कर्कश स्पर्श

★

१३

बोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

१ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व
२ अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व
३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्व
४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्व
५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्व
६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्व

७ ससारमार्ग को मोक्षमार्ग समझना मिथ्यात्व
८ मोक्षमार्ग को ससारमार्ग समझना मिथ्यात्व
६ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
१० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

★

१४

बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

१ जीव तत्त्व
२ अजीव तत्त्व
३ पुण्य तत्त्व
४ पाप तत्त्व
५ आस्रव तत्त्व
६ सवर तत्त्व
७ निर्जरा तत्त्व
८ वन्ध तत्त्व
६ मोक्ष तत्त्व

जीव तत्त्व के चौदह भेद

१ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त
२ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्या[illegible]
३ बादर एकेन्द्रिय [illegible]

४ बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त
५ द्वीन्द्रिय पर्याप्त
६ द्वीन्द्रिय अपर्याप्त
७ त्रीन्द्रिय पर्याप्त
८ त्रीन्द्रिय अपर्याप्त
९ चतुरिन्द्रिय पर्याप्त
१० चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त
११ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त
१२ असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त
१३ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त
१४ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त

अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद

१ स्कन्ध २ देश
३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद

१ स्कन्ध २ देश
३ प्रदेश

आकाशास्ति काय के तीन भेद

3826

१ स्कन्ध

२ देश

३ प्रदेश

१ दशवा काल

पुद्गलास्ति काय के चार भेद

१ स्कन्ध

२ देश

३ प्रदेश

४ परमाणु

पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ अन्न पुण्य

२ पान पुण्य

३ स्थान पुण्य

४ शय्या पुण्य

५ वस्त्र पुण्य

६ मन पुण्य

७ वचन पुण्य

८ काय पुण्य

९ नमस्कार पुण्य

पाप तत्त्व के अठारह भेद

१ प्राणातिपात

२ मृषावाद

३ अदत्तादान

४ मैथुन

५ परिग्रह

६ क्रोध

७	मान	१३	अभ्याख्यान
८	माया	१४	पैशुन्य
९	लोभ	१५	पर-परिवाद
१०	राग	१६	रति-अरति
११	द्वेष	१७	मायामृषा
१२	कलह	१८	मिथ्यादर्शन

आस्रव तत्त्व के बीस भेद

पाच अव्रत

१	प्राणातिपात	३	अदत्तादान
२	मृषावाद	४	मैथुन

५ परिग्रह

पांच इन्द्रिय

१ श्रोत्र इन्द्रिय - प्रवृत्ति
२ चक्षुष् इन्द्रिय - प्रवृत्ति
३ घ्राण इन्द्रिय - प्रवृत्ति
४ रसन इन्द्रिय - प्रवृत्ति
५ स्पर्शन इन्द्रिय - प्रवृत्ति

पाच आस्रव

१ मिथ्यात्व आस्रव
२ अविरति आस्रव
३ प्रमाद आस्रव
४ कषाय आस्रव
५ अशुभ योग आस्रव

तीन योग

१ मन - प्रवृत्ति
२ वचन - प्रवृत्ति
३ काय - प्रवृत्ति

दो अयतना

१ भाण्डोपकरण, अयतना से लेना, रखना।
२ सूचि कुशाग्रमात्र, अयतना से लेना, रखना।

संवर तत्त्व के बीस भेद

पाच व्रत

१ प्राणातिपात - विरमण
२ मृषावाद - विरमण

३ अदत्तादान - विरमण
४ अब्रह्मचर्य - विरमण
५ परिग्रह - विरमण

पाच इन्द्रिय

१ श्रोत्र इन्द्रिय - निग्रह
२ चक्षुष् इन्द्रिय - निग्रह
३ घ्राण इन्द्रिय - निग्रह
४ रसन इन्द्रिय - निग्रह
५ स्पर्शन इन्द्रिय - निग्रह

पाच सवर

१ सम्यक्त्व सवर
२ विरति सवर
३ अप्रमाद सवर
४ अकपाय सवर
५ शुभ योग संवर

तीन योग

१ मनो - निग्रह
२ वचन - निग्रह
३ काय - निग्रह

दो यतना

१ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना।
२ सूचि कुशाग्र मात्र, यतना से लेना, रखना।

निर्जरा तत्त्व के वारह भेद

१ अन तप
२ ऊनोदरी तप
३ भिक्षाचरी तप
४ रस-परित्याग तप
५ काय क्लेश तप
६ प्रति सलीनता तप

७ प्रायश्चित्त तप
८ विनय तप
९ वैयावृत्य तप
१० स्वाध्याय तप
११ ध्यान तप
१२ व्युत्सर्ग तप

बन्ध तत्त्व के चार भेद

१ प्रकृति बन्ध
२ स्थिति बन्ध

बोल सोलहवाँ : दण्डक चौबीस

सात नरक का एक दण्डक

१ रत्न प्रभा
२ शर्करा प्रभा
३ वालुका प्रभा
४ पङ्क प्रभा
५ धूम प्रभा
६ तमः प्रभा
७ महातम प्रभा

दश भवन-पति के दश दण्डक

१ असुर कुमार
२ नाग कुमार
३ सुपर्ण कुमार
४ विद्युत् कुमार
५ अग्नि कुमार
६ द्वीप कुमार
७ उदधि कुमार
८ दिशा कुमार

९ पवन कुमार
१० स्तनित कुमार

पाच स्थावर के पाच दण्डक

१ पृथ्वी काय
२ अप् काय
३ तेजस् काय
४ वायु काय
५ वनस्पति काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक

१ द्वीन्द्रिय
२ त्रीन्द्रिय
३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक

१ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
१ मनुष्य का एक दण्डक
१ व्यन्तर देव का एक दण्डक
१ ज्योतिप देव का एक दण्डक
१ वैमानिक देव का एक दण्डक

☆

१७

बोल सतरहवाँ : लेश्या छह

१ कृष्ण लेश्या

२ नील लेश्या

३ कापोत लेश्या

४ तेजो - लेश्या

५ पद्म लेश्या

६ शुक्ल लेश्या



१८

बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

१ सम्यग् दृष्टि

२ मिथ्यादृष्टि

३ मिश्र दृष्टि



१६

बोल उन्नीसवाँ : ध्यान चार

१ आर्त ध्यान
२ रौद्र ध्यान
३ धर्म ध्यान
४ शुक्ल ध्यान

*

२०

बोल बीसवाँ - षड् द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पांच बोल

१ द्रव्य मे एक
२ क्षेत्र मे लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी ।
५ गुण से चलन गुण,
जल मे मछली का दृष्टान्त .

अधर्मास्ति काय के पांच बोल

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र मे लोक-प्रमाण

३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी,
५ गुण से स्थिर गुण,
श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

आकाशास्ति काय के पाच बोल

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोका-लोक-व्यापी,
५ गुण से अवकाश-दान गुण,
दूध मे बताशे का दृष्टान्त

काल द्रव्य के पाच बोल

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से अढाई द्वीप प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव मे वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, अजीव, शाश्वत, अढाई द्वीप-वर्ती

५ गुण से वर्तना गुण,
नये को पुराना करे,
नये पुराने कपड़े का दृष्टान्त

जीवास्तिकाय के पाच बोल

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित,
अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से उपयोग गुण,
चन्द्र की कला का दृष्टान्त

पुद्गलास्तिकाय के पाच बोल

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-सहित
रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से पूरण-गलन-गुण,
मिलते-बिखरते बादल का दृष्टान्त

*

२१

बोल इक्कीसवाँ : राशि दो

१ जीव राशि
२ अजीव राशि



२२

बोल बाईसवाँ : श्रावक के बारह व्रत

पाच अणुव्रत

१ अहिंसा अणु व्रत
२ सत्य अणु व्रत
३ अस्तेय अणु व्रत
४ ब्रह्मचर्य अणु व्रत
५ अपरिग्रह अणु व्रत

तीन गुण व्रत

१ दिशा व्रत
२ भोगोपभोग-परिमाण व्रत
३ अनर्थ-दण्ड-विरमण व्रत

चार शिक्षा व्रत

१ सामायिक व्रत
२ देशावकाशिक व्रत
३ पौषध व्रत
४ अतिथि संविभाग व्रत

★

२३

बोल तेईसवाँ : साधु के पाँच महाव्रत

१ अहिंसा महाव्रत
२ सत्य महाव्रत
३ अस्तेय महाव्रत
४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
५ अपरिग्रह महाव्रत

★

२४

बोल चौबीसवाँ : प्रत्याख्यान के ४९ भंग

अंक ११ भंग नव—एक करण, एक योग से कथन

१	करूँ नहीं,	मन से
२	करूँ नहीं,	वचन से
३	करूँ नहीं,	काय से

४ कराऊँ नही, मन से
५ कराऊँ नही, वचन से
६ कराऊँ नही, काय से

७ अनुमोदूँ नहीं, मन से
८ अनुमोदूँ नही, वचन से
९ अनुमोदूँ नही, काय से

अंक १२ भग नव—एक करण दो योग से कथन

१ करूँ नही, मन से, वचन से
२ करूँ नही, मन से, काय से
३ करूँ नही, वचन से, काय से

४ कराऊँ नही, मन से, काय से
५ कराऊँ नही, मन से, वचन से
६ कराऊँ नही, वचन से, काय से

७ अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से
८ अनुमोदूँ नही, मन से, काय से
९ अनुमोदूँ नही, वचन से, काय से

अक १३ भग तीन–एक करण तीन योग से कथन

१ करूँ नही मन से, वचन से, काय से
२ कराऊँ नही, मन से, वचन से, काय से
३ अनुमोदूँ नही, मन से, वचन ने, काय से

अक २१ भग नव–दो करण एक योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, वचन से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, काय से
४ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
५ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
६ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से
७ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
८ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक २२ भग नव–दो करण दो योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से, वचन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से, काय से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, वचन से, काय से
४ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से
५ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, काय से
६ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से, काय से
७ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से
८ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, काय से
९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से, वचन से

अक २३ भग तीन—दो करण तीन योग से कथन

१ करूँ नही, कराउँ नही,
मन से, वचन से, काय से

२ करूँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से, काय से

३ कराउँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से, काय से

अक ३१ भग तीन—तीन करण एक योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक ३२ भग तीन—तीन करण दो योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, वचन से

२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही,
मन से, काय से

३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही;
वचन से, काय से

अक ३३ भ ग एक—तीन करण, तीन योग से कथन

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही
मन से, वचन से, काय से

*

२५

बोल पच्चीसवाँ : चारित्र पांच

१ सामायिक चारित्र

२ छेदोपस्थापन चारित्र

३ परिहार विशुद्धि चारित्र

४ सूक्ष्म सपराय चारित्र

५ यथाख्यात चारित्र

*

पच्चीस बोल

[व्याख्या]

१

बोल पहला : गति चार

१ नरक गति	३ मनुष्य गति
२ तिर्यञ्च गति	४ देव गति

व्याख्या

ससार मे अनन्त जीव है। साधारण व्यक्ति के लिए सबको जानना और वर्णन कर सकना सम्भव नही है। केवली-भगवान् ही अपने अनन्त ज्ञान से अनन्त जीवो को जान-देख सकते है। अल्पज्ञ जीव मे वैसा सामर्थ्य नहीं है, कि वह समस्त जीवो को जान सके, देख सके। क्योकि अल्पज्ञ जीव के पास ज्ञान का साधन है—इन्द्रिय। इन्द्रियो द्वारा सूक्ष्म और अतीन्द्रिय पदार्थों को जाना नही जा सकता।

फिर, एक अल्पज्ञ आत्मा जीवो का परिज्ञान कैसे करे? शास्त्रकार ने इसी प्रश्न के समाधान के लिए अनन्त जीवो का चार विभागो मे वर्गीकरण कर दिया है। संसार के समग्र जीव इन में समाहित हो जाते हैं। ससारस्थ एक भी जीव ऐसा नही रहता जो इस बोल मे न आ जाता हो।

लोक-भाषा में गति का अर्थ है—गमन, चलना-फिरना। एक स्थान से दूसरे स्थान मे जाना। परन्तु यहाँ पर गति का



एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव-भव मे जाने को प्रस्थान करता है तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव-भव में रहता है, तब तक की वह अवस्था–विशेष देव-गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

'नाम-कर्म' की उत्तर प्रकृतियो मे, 'गति-नाम' एक प्रकृति है। उस गति-नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक मे, कभी तिर्यञ्च मे, कभी मनुष्य मे और कभी देव योनि मे जन्म ग्रहण करता है। अत ये सब ससारी जीव की अशुद्ध पर्याय हैं, जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती हैं। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नही।

जैन दर्शन मे, आत्मा के दो रूप माने गए है—मुक्त और ससारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मों से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार ससार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी ससार मे नही आता। मुक्त एव सिद्ध आत्माएँ अनन्त हैं और अनन्त होगी।

परन्तु जो आत्माएं अभी तक कर्म-बन्धनो में बद्ध हैं, वे अशुद्ध हैं, कर्म-सहित हैं, मल-सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओ को ससारस्थ कहते हैं। प्रस्तुत बोल मे इन्ही ससारी आत्माओ का वर्णन किया गया है। ससारी आत्माएं चार ही प्रकार की हो सकती है—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।

नारक

नरक भूमि के वासी जीव *नारक* कहे जाते है। नरक-भूमि सात हैं, जो इस प्रकार है—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा।

नरक एक ऐसा स्थान है, जहाँ जीव अपने अशुभ कर्मों का फल पाता है। नारक जीवो मे अशुद्ध लेश्या और अशुद्ध परिणाम होते हैं। नरक की वेदना तीन प्रकार की होती है—क्षेत्र-स्वभाव जन्म शीतादि, परस्परजन्य और असुरजन्य।

असञ्ज्ञी जीव मरकर पहली भूमि तक, भुजपरिसर्प दूसरी तक, पक्षी तीसरी तक, सिंह चौथी तक, सर्प पांचवी तक, नारी छठी तक और मनुष्य एव मत्स्य सातवी तक जा सकते है।

नारक जीव मरकर नारक और देव नही वन सकते। तिर्यञ्च और मनुष्य ही वन सकते है।

तिर्यञ्च

नारक, मनुष्य और देव को छोड़ कर शेष जितने भी संसारी जीव है, वे तिर्यञ्च कहे जाते हैं। नरक-गति की तरह तिर्यञ्च गति भी पापमूलक मानी जाती है। तिर्यञ्च जीवो के तीन भेद है— जलचर, स्थलचर, और खेचर।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव भी तिर्यञ्च योनि मे समाविष्ट हो जाते है। मनुष्य, देव तथा नारक को छोड़कर शेष समस्त पञ्चेन्द्रिय त्रस जीव भी तिर्यञ्च गति मे है। लोक-

एक विशेष पारिभाषिक अर्थ ग्रहण किया गया है। एक भव से दूसरे भव की प्राप्ति को गति कहा गया है। जब एक आत्मा मनुष्य-भव के आयुष्य को पूर्ण करके देव-भव मे जाने को प्रस्थान करता हैं तो उस क्षण से लेकर जब तक वह देव-भव मे रहता है, तब तक की वह अवस्था–विशेष देव-गति कहलाती है। इसी प्रकार मनुष्य गति, तिर्यंच गति और नरक गति के विषय में भी समझ लेना चाहिए।

'नाम-कर्म' की उत्तर प्रकृतियो मे, 'गति-नाम' एक प्रकृति है। उस गति-नाम कर्म के उदय से जीव कभी नरक मे, कभी तिर्यञ्च मे, कभी मनुष्य मे और कभी देव योनि में जन्म ग्रहण करता है। अत ये सब ससारी जीव की अशुद्ध पर्याय हैं; जो गति नाम कर्म के उदय से होती रहती है। शुद्ध दृष्टि से जीव, केवल शुद्ध जीव है, नारक आदि नही।

जैन दर्शन मे, आत्मा के दो रूप माने गए हैं—मुक्त और ससारस्थ। मुक्त आत्मा वह है, जो कर्मो से रहित हो चुका है। वह शुद्ध है, निरञ्जन है, मल-रहित है। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्मा को सिद्ध कहते हैं। जो एक बार ससार से मुक्त हो गया, वह फिर कभी ससार मे नही आता। मुक्त एव सिद्ध आत्माएँ अनन्त हैं और अनन्त होगी।

परन्तु जो आत्माएँ अभी तक कर्म-बन्धनो मे बद्ध हैं, वे अशुद्ध हैं, कर्म-सहित हैं, मल-सहित हैं। शास्त्रकार इस प्रकार की आत्माओ को ससारस्थ कहते हैं। प्रस्तुत बोल मे इन्ही ससारी आत्माओ का वर्णन किया गया है। ससारी आत्माएँ चार ही प्रकार की हो सकती हैं—नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव।



नारक

नरक भूमि के वासी जीव नारक कहे जाते है। नरक-भूमि सात हैं, जो इस प्रकार हैं—रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तम प्रभा और महातम प्रभा।

नरक एक ऐसा स्थान है, जहाँ जीव अपने अशुभ कर्मों का फल पाता है। नारक जीवो में अशुद्ध लेश्या और अशुद्ध परिणाम होते हैं। नरक की वेदना तीन प्रकार की होती है—क्षेत्र-स्वभाव जन्म शीतादि, परस्परजन्य और असुरजन्य।

असज्ञी जीव मरकर पहली भूमि तक, भुजपरिसर्प दूसरी तक, पक्षी तीसरी तक, सिंह चौथी तक, सर्प पांचवी तक, नारी छठी तक और मनुष्य एवं मत्स्य सातवी तक जा सकते है।

नारक जीव मरकर नारक और देव नही बन सकते। तिर्यञ्च और मनुष्य ही बन सकते है।

तिर्यञ्च

नारक, मनुष्य और देव को छोड़ कर शेष जितने भी ससारी जीव हैं, वे तिर्यञ्च कहे जाते हैं। नरक-गति की तरह तिर्यञ्च गति भी पापमूलक मानी जाती है। तिर्यञ्च जीवो के तीन भेद हैं— जलचर, स्थलचर, और खेचर।

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव भी तिर्यञ्च योनि मे समाविष्ट हो जाते हैं। मनुष्य, देव तथा नारक को छोड़कर शेष समस्त पञ्चेन्द्रिय त्रस जीव भी तिर्यञ्च गति मे है। लोक-

भाषा मे, पशु, पक्षी और कीट-पतगे आदि जीव तिर्यञ्च हैं। तिर्यञ्च अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार प्रायः चारो गतियो मे जा सकते हैं।

मनुष्य

शास्त्र मे मनुष्य-जन्म को सर्वश्रेष्ठ और सर्व-ज्येष्ठ कहा गया है। इस का मुख्य कारण यह है, कि मनुष्य अपनी सयम साधना से मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है, जबकि अन्य गतियो मे यह सम्भव नही है। गुण-स्थान की दृष्टि से भी नारक और देव चतुर्थ गुण-स्थान से आगे नही बढ सकते। तिर्यञ्च का विकास पाचवें से आगे नही। परन्तु मनुष्य में समस्त गुण-स्थान सम्भवित हैं। अत मनुष्य जन्म सर्वश्रेष्ठ एव सर्वज्येष्ठ है।

जन्म के आधार पर मनुष्यो के दो भेद है—गर्भज और सम्मूच्छिम। माता और पिता के सयोग से जो जन्म मिलता है, वह गर्भज कहा जाता है। मनुष्य और तिर्यञ्च मे ही यह होता है। माता और पिता के सयोग के विना जो मल-मूत्रादि मे मानवाकार प्राणी उत्पन्न हो जाते हैं, वे सम्मूच्छिम कहे जाते हैं। मनुष्य की तरह तिर्यञ्च भी सम्मूच्छिम होते हैं और ये दोनों मनोरहित होने से असज्ञी ही होते हैं।

भूमि के आधार पर मनुष्यो के दो भेद किये गए है—भोग-भूमिज तथा कर्मभूमिज। भोग-भूमि वह है, जहाँ असि-कर्म, मसि-कर्म और कृषि-कर्म नही होते। और जहाँ ये होते हैं, वह कर्म भूमि हैं।

सस्कृति और सभ्यता के आधार पर भी मनुष्यों के भेद किये गये है। जैसे कि आर्य और म्लेच्छ। मनुष्य भी मर कर प्राय' चारो गतियो मे जा सकता है।

देव

देव शब्द भारतीय सस्कृति एव साहित्य मे चिरपरिचित है। देवगति मे सुख माना गया है। वहाँ शुभ लेश्या और शुभ परिणाम माने गए हैं। वहाँ प्राय सातावेदनीय कर्म का उदय माना गया है।

देवो के चार भेद है—भवन पति, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक। देव मरकर न देव हो सकता है और न नारक। किन्तु अपने शुभाशुभ कर्मो के कारण मनुष्य या तिर्यञ्च गति में जन्म ले सकता है।

गतियो के कारण

संक्षेप में नरक गति के कारण है—महारम्भ, महापरिग्रह। तिर्यञ्च गति का कारण है—माया। मनुष्य गति का कारण है—अल्पारम्भ, अल्पपरिग्रह। देव गति का कारण है—सराग-सयम, सयमासयम—श्रावकत्व बालतप,और अकाम निर्जरा आदि।



२

बोल दूसरा : जाति पाँच

१ एकेन्द्रिय जाति   ३ त्रीन्द्रिय जाति
२ द्वीन्द्रिय जाति   ४ चतुरिन्द्रिय जाति
५ पञ्चेन्द्रिय जाति

व्याख्या

जीव अनन्त हैं। वे सभी समान नही हैं। विकास-क्रम के आधार पर समग्र ससारी जीवो को पाँच विभागो मे विभक्त किया गया है। समस्त जीवो मे चैतन्य गुण समान होने पर भी उस गुण की अभिव्यक्ति मे साधनभूत इन्द्रियो के विकास-क्रम को लेकर ही ससारी जीवो के यहाँ पर पाँच भेद किये गये हैं।

जाति शब्द के दो अर्थ हैं—जन्म और समूह। यहाँ पर समूह अर्थ ही ठीक बैठता है। एकेन्द्रिय जाति का अर्थ है—ऐसे प्राणियो का समूह जिन के केवल एक ही इन्द्रिय है। इसी प्रकार पञ्चेन्द्रिय जाति तक का अर्थ समझ लेना चाहिए।

इन्द्रिय शब्द का अर्थ है—ज्ञान का साधन। जिस के द्वारा आत्मा को पदार्थों का ज्ञान होता है।

इन्द्रियाँ कितनी हैं? पाँच। कुछ लोगो की मान्यता है, कि मन भी इन्द्रिय है। फिर पाँच ही क्यो? मन इन्द्रिय अवश्य है पर वह अन्तरग है। यहाँ पर जीवो के जो पाँच भेद किये गए है, वे वहिरग इन्द्रियो के आधार पर ही किए हैं।

नाम कर्म को उत्तर प्रकृतियो मे, जाति नाम कर्म भी एक प्रकृति है। उसके उदय,से ही जीवो को एकेन्द्रिय आदि मे जन्म ग्रहण करना पडता है।

एकेन्द्रिय जीव—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति।

द्वीन्द्रिय जीव—लट, सीप, शख, कृमि, घुण आदि।

त्रीन्द्रिय जीव—चींटी, चीचड, जू, लीख, मकोडा आदि।

चतुरिन्द्रिय जीव—मक्खी, मच्छर, भवरा, बिच्छू आदि।

पंचेन्द्रिय जीव—नारक, पशु आदि, मनुष्य, देव।



३

बोल तीसरा : काय छह

१ पृथ्वी काय	४ वायु काय
२ अप् काय	५ वनस्पति काय
३ तेजस काय	६ त्रस काय

व्याख्या

विभिन्न प्रकार के पुद्गलो से बने शरीरो के द्वारा जीव के जो विभाग होते हैं, उन्हे काय कहते हैं।

पृथ्वी है काय जिन की, वे जीव पृथ्वी काय हैं। अप् (जल) है काय जिनकी, वे जीव अप् काय। तेजस् (अग्नि) है काय जिन

४

बोल चौथा : इन्द्रिय पॉच

१ श्रोत्रेन्द्रिय ३ घ्राणेन्द्रिय
२ चक्षुरिन्द्रिय ४ रसनेन्द्रिय
५ स्पर्शनेन्द्रिय

व्याख्या

समस्त ससारी जीवो में समान इन्द्रियाँ नही होती हैं। किसी मे एक, किसी मे दो, किसी में तीन, किसी मे चार और किसी में पाँच। किसी जीव मे पाँच से अधिक इन्द्रिय नही हो सकती। क्योकि इन्द्रियां पाँच ही है। यहाँ पर इन्द्रियो के आधार पर ससारी जीवो का वर्गीकरण किया गया है।

आत्मा को इन्द्र कहते हैं, क्यो कि वह ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है। इन्द्र जिस चिन्ह से जाना जाता है, अथवा जो इन्द्र के ज्ञान का साधन है, उसे इन्द्रिय कहा गया है, और वे संख्या मे पाच हैं—स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुष्, और श्रोत्र।

श्रोत्र—जिस इन्द्रिय से शब्द का ज्ञान किया जाता है, सुना जाता है, वह श्रोत्र इन्द्रिय है, अर्थात् कर्ण—Sense of hearing (Ears)

चक्षुष्—जिस इन्द्रिय से रूप का ज्ञान किया जाता है, देखा जाता है, वह चक्षुष् इन्द्रिय है, अर्थात् नेत्र—Sense of sight (Eyes)

घ्राण—जिस इन्द्रिय से गन्ध का ज्ञान किया जाता है, सूँघा जाता है, वह घ्राण इन्द्रिय है, अर्थात् नाक—Sense of smell (Nose)

रसन—जिस इन्द्रिय से रस का ज्ञान किया जाता है, अर्थात् स्वाद लिया जाता है, वह रसन इन्द्रिय है, अर्थात् जिह्वा—Sense of test (Tongue)

स्पर्शन—जिस इन्द्रिय से स्पर्श का ज्ञान किया जाता है, वह स्पर्शन इन्द्रिय है, अर्थात् त्वचा—Sense of Touch.

इन्द्रियो की तरह मन भी ज्ञान का साधन है, फिर इस को इन्द्रिय क्यो नही माना गया ? मन ज्ञान का साधन अवश्य है, परन्तु फिर भी रूप आदि विषयो मे प्रवृत्त होने के लिए मन को चक्षु आदि इन्द्रियो का सहारा लेना पडता है। यद्यपि मन स्वतन्त्र रूप से भी अपने चिन्त्य विषय को ग्रहण करता है, फिर भी अधिकतर मन का कार्य इन्द्रियो द्वारा गृहीत विषय का चिन्तन करना मात्र है। अत उसे इन्द्रिय न मान कर अनिन्द्रिय (इन्द्रिय जैसा) कहा गया है।

यद्यपि मन पशु और पक्षी आदि मे भी होता है, तथापि मन की सब से विकसित अवस्था मनुष्य मे देखी जाती है। क्योकि मनुष्य का नाडी-तन्त्र Nervous system इष्ट दूसरे प्राणियो की अपेक्षा अधिक विकसित है। मनुष्य मे Mental power अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ है।

मनोविज्ञान के अनुसार मन के तीन भाग हो सकते हैं—चेतन मन conscious, चेतनोन्मुख Pre-conscious और अचेतन Un-conscious

मनः पर्याप्ति—जिस शक्ति के द्वारा जीव मनोयोग्य मनोवर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके मन रूप मे बदलता और छोडता है।

किन जीवों के कितनी पर्याप्ति होती है? एकेन्द्रिय जीव के भाषा और मन को छोड कर शेष सभी हैं। विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक) और असज्ञी पञ्चेन्द्रिय के मन को छोडकर शेष समस्त पर्याप्ति है। सज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के छहो पर्याप्ति होती हैं।

संसारी जीवो मे ये पर्याप्ति कम से कम चार और अधिक से अधिक छह होती हैं। कोई भी जीव जब अपर्याप्त-दशा मे मरता है, तब वह कम से कम प्रथम की तीन पर्याप्ति तो अवश्य ही पूरी करता है।

पर्याप्ति के आधार पर जीवो के दो भेद किये है—पर्याप्त और अपर्याप्त। जिस जीव ने स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है, वह पर्याप्त कहा जाता है।

अपर्याप्त वह है, जो स्व-योग्य पर्याप्ति को पूर्ण नही कर पाया है।



६

बोल छठा : प्राण दस

१ श्रोत्र बल प्राण	६ मन बल प्राण
२ चक्षुष् बल प्राण	७ वचन बल प्राण
३ घ्राण बल प्राण	८ काय बल प्राण
४ रसन बल प्राण	९ श्वासोच्छ्वास बल प्राण
५ स्पर्शन बल प्राण	१० आयुष्य बल प्राण

व्याख्या

प्राण अर्थात् जीवन जीने की शक्ति। जिस शक्ति के सयोग से जीव जीवित रहे, और वियोग से मर जाय; वह प्राण है। प्राण जीव के बाह्य लक्षण हैं। प्राणो के बिना जीव जीवित नही रहता।

शास्त्र मे प्राण के दो भेद है—द्रव्य और भाव। जो प्राण केवल ससार अवस्था मे ही मिलता है, मुक्त दशा में नही, वह द्रव्य प्राण कहा जाता है। द्रव्य प्राण के दश भेद हैं।

पाँच इन्द्रिय, तीन योग और श्वासोच्छ्वास तथा आयुष्य ये सब मिलकर दश द्रव्य प्राण हैं।

जो प्राण मुक्त दशा मे भी आत्मा के साथ रहते हैं, वे भाव प्राण हैं। क्योंकि वे आत्मा के निज स्वरूप हैं। जैसे कि ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य।

यहाँ पर प्रत्येक शब्द के साथ बल लगा है। बल का अर्थ है, शक्ति-विशेप। छूने की शक्ति, चखने की शक्ति, सूँघने की शक्ति, देखने की शक्ति और सुनने की शक्ति। यह इन्द्रिय प्राण है।

विचार करने की शक्ति, बोलने की शक्ति, और चलने-फिरने आदि शारीरिक शक्ति। ये तीन योग रूप प्राण है।

जीव जिस शक्ति से बाहर की वायु को अन्दर खीचता है, और अन्दर की वायु को बाहर फेकता है, वह क्रमश. श्वास और उच्छ्वास है।

जिस शक्ति के अस्तित्व से जीव जीवित रहता है, और जिस के असद् भाव से जीव मर जाता है, वह आयुष्य प्राण है। दशो प्राणो में आयुष्य प्राण सब से मुख्य है। इसके अभाव मे दूसरे प्राणो का कोई महत्त्व नही रहता।

किस जीव में कितने प्राण हो सकते है? इसके समाधान मे शास्त्र मे कहा गया है, कि—

एकेन्द्रिय जीव में चार प्राण हैं—स्पर्शन इन्द्रिय, काय, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य।

द्वीन्द्रिय जीव मे छह प्राण है—चार पूर्वोक्त तथा रसन-इन्द्रिय और वचन।

त्रीन्द्रिय जीव मे सात प्राण हैं—छह पूर्वोक्त और घ्राणेन्द्रिय।

चतुरिन्द्रिय जीव मे आठ प्राण हैं—सात पूर्वोक्त और चक्षुरिन्द्रिय।

असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव मे नव प्राण हैं—आठ पूर्वोक्त और श्रोत्र इन्द्रिय।

सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव मे दश प्राण है— नव पूर्वोक्त और दशवा मन।

★

७

बोल सातवाँ : शरीर पाँच

१ औदारिक शरीर
२ वैक्रिय शरीर
३ आहारक शरीर
४ तैजस शरीर
५ कार्मण शरीर

व्याख्या

आत्मा जिस के द्वारा पूर्व-सचित्त कर्मो को भोगता है, उसे शरीर कहते है। "भोगायतन शरीरम्।" अर्थात् शरीर भोग का आयतन है, स्थान है।

संसार अवस्था मे इन पांच शरीरो मे से कोई न कोई शरीर अवश्य ही रहता है। एक जन्म से दूसरे जन्म को ग्रहण करते समय अन्तराल गति मे भी तैजस और कार्मण शरीर रहते हैं। क्योकि विना शरीर के जन्म और मरण हो कैसे सकता है।

औदारिक शरीर—उदार (स्थूल) पुद्गलो से बना शरीर।

अथवा प्रधान पुद्गलो से बना शरीर। तीर्थङ्कर आदि का शरीर प्रधान पुद्गलो से बनता है। शेष सर्व साधारण जीवो का शरीर स्थूल असार पुद्गलो से बना होता है।

वैक्रिय शरीर—जिस शरीर से विविध और विशिष्ट प्रकार की क्रियाएँ होती है। जैसे एक रूप से अनेक रूप करना। अणु से विराट् करना। दृश्य से अदृश्य करना, आदि।

आहारक शरीर—आहारक लब्धि से बनाया गया शरीर। जीव दया, तीर्थङ्कर की ऋद्धि का दर्शन तथा सशय निवारण आदि विशेष प्रयोजन से चतुर्दश पूर्वधर मुनि अपनी आहारक लब्धि से जो शरीर बनाते है, वह आहारक शरीर होता है।

तैजस शरीर—तैजस पुद्गलो से बना हुआ शरीर, शरीर मे विद्यमान उष्णता से इस शरीर का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह शरीर आहार का पाचन करता है। तपोविशेष से प्राप्त तैजस लब्धि का कारण भी यही शरीर है।

कार्मण शरीर—कार्मण वर्गणाओ से बना शरीर। अथवा जीव के प्रदेशो के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म पुद्गलो को कार्मण शरीर कहते है। यह शरीर ही सब शरीरो का बीज है।

प्रथम तीन शरीरो के अग, उपाग और अगोपाग होते है। तैजस और कार्मण के नहीं। क्योंकि वे सूक्ष्म शरीर हैं। इन पाचो मे पूर्व से उत्तरोत्तर सूक्ष्म है और उत्तर से पूर्व-पूर्व शरीर स्थूल हैं। सब से स्थूल औदारिक और सब शरीरो से सूक्ष्म शरीर कार्मण है।



८

बोल आठवाँ : योग पन्द्रह

चार मन के —

१ सत्य मनो योग
२ असत्य मनोयोग
३ मिश्र मनोयोग
४ व्यवहार मनोयोग

चार वचन के —

१ सत्य वचन योग
२ असत्य वचन योग
३ मिश्र वचन योग
४ व्यवहार वचन योग

सात काय के —

१ औदारिक काय योग
२ औदारिक-मिश्र काय योग
३ वैक्रिय काय योग

४ वैक्रिय-मिश्र काय योग

५ आहारक-काय योग

६ आहारक-मिश्र काय योग

७ कार्मण काय योग

व्याख्या

१ भारतीय साहित्य मे योग शब्द सुपरिचित एव बहु व्यापक है। सामान्य रूप मे योग का अर्थ ध्यान तथा समाधि किया जाता है। 'योग-सूत्र' मे चित्त की वृत्तियो के निरोध को योग कहा गया है।

परन्तु जैन शास्त्रानुसार, प्रस्तुत मे योग शब्द का विशेष अर्थ लिया गया है। यहाँ पर मन, वचन और काय के व्यापार को योग कहा गया है। मन, वचन और काय वर्गणा के पुद्गलो की सहायता से, आत्म-प्रदेशो में होने वाले परिस्पन्द को Vibration कम्पन व हलन-चलन को योग कहा गया है।

मुख्य रूप मे योग के तीन भेद हैं। विस्तार की अपेक्षा से उसी के पन्द्रह भेद कर दिये गए है।

मन दो प्रकार का है—भाव मन और द्रव्य मन। भाव मन को Subjective mind और द्रव्यमन को Objective mind कहते है। द्रव्य मन का सम्बन्ध Brain से है। और भाव मन का सम्बन्ध आत्मा से।

मन की प्रवृत्ति चार ही प्रकार की हो सकती है—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी सत्यासत्य (मिश्र) और कभी लोक व्यवहाररूप।

वचन का अर्थ है भाषा। वह भी चार ही प्रकार की हो सकती है—कभी सत्य, कभी असत्य, कभी सत्यासत्य (मिश्र) और कभी लोक-व्यवहाररूप।

काय का अर्थ है—शरीर। उस के पाच भेद हैं। शरीर का व्यापार सात प्रकार का ही हो सकता है। अधिक नही। अत. काय योग के सात भेद किए गए हैं।

कार्मण योग की तरह तैजस योग क्यो नही माना गया ? उसके स्वतन्त्र रूप मे मानने की आवश्यकता नही है। जो व्यापार कार्मण शरीर का है, वही तैजस शरीर का है। क्योंकि तैजस और कार्मण शरीर सदा सहचर रहते है। अत कार्मण योग मे ही तैजस योग समाहित हो जाता है।

☆

९

बोल नौवाँ : उपयोग बारह

पाच ज्ञान —

१ मति ज्ञान
२ श्रुत ज्ञान
३ अवधि ज्ञान
४ मनः पर्याय ज्ञान
५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान—

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ अवधि अज्ञान (विभङ्ग ज्ञान)

चार दर्शन

१ चक्षुर् दर्शन
२ अचक्षुर् दर्शन
३ अवधि दर्शन
४ केवल दर्शन

व्याख्या

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। किसी भी वस्तु को सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या साकारोपयोग कहते है। पदार्थों के विशेष धर्म, विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—साकारोपयोग है। पदार्थों के सामान्य बोध को दर्शन या निराकारोपयोग कहते हैं।

जैन दर्शन में वस्तु सामान्य-विशेषात्मक मानी है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म को मुख्य रूप में और उस के सामान्य धर्म को गौण रूप मे ग्रहण करती है, तो चेतना के उस व्यापार को ज्ञानोपयोग कहा जाता है। परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप मे, और उसके विशेष धर्म को गौण रूप मे ग्रहण करती है, तब उसे दर्शनोपयोग कहते है, ज्ञान साकार और दर्शन निराकार होता है।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान। मन से अरूपी पदार्थो का भी परोक्ष ज्ञान किया जा सकता है।

श्रुत ज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है। जिस से शब्द और और अर्थ का सम्बन्ध जाना जाता है। जो मति ज्ञान के बाद होता है।

मति और श्रुत का परस्पर सम्बन्ध है। दोनो मे कार्य कारण भाव है। मति ज्ञान कारण है और श्रुत ज्ञान कार्य है। दोनो ज्ञान निमित्तावलम्बी होने से परोक्ष हैं।

९

बोल नौवाँ : उपयोग बारह

पाच ज्ञान —

१ मति ज्ञान
२ श्रुत ज्ञान
३ अवधि ज्ञान
४ मनः पर्याय ज्ञान
५ केवल ज्ञान

तीन अज्ञान—

१ मति अज्ञान
२ श्रुत अज्ञान
३ अवधि अज्ञान (विभङ्ग ज्ञान)

चार दर्शन

१ चक्षुर् दर्शन
२ अचक्षुर् दर्शन
३ अवधि दर्शन
४ केवल दर्शन

व्याख्या

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते है। किसी भी वस्तु को सामान्य या विशेष रूप से जान लेना उपयोग है। उपयोग के दो भेद हैं—ज्ञान और दर्शन। पदार्थों के विशेष बोध को ज्ञान या साकारोपयोग कहते है। पदार्थों के विशेष धर्म, विशेष गुण और विशेष क्रिया का ज्ञान होना—साकारोपयोग है। पदार्थों के सामान्य बोध को दर्शन या निराकारोपयोग कहते है।

जैन दर्शन मे वस्तु सामान्य-विशेषात्मक मानी है। जब चेतना वस्तु के विशेष धर्म को मुख्य रूप मे और उस के सामान्य धर्म को गौण रूप मे ग्रहण करती है, तो चेतना के उस व्यापार को ज्ञानोपयोग कहा जाता है। परन्तु जब चेतना किसी भी वस्तु के सामान्य धर्म को मुख्य रूप मे, और उसके विशेष धर्म को गौण रूप मे ग्रहण करती है, तब उसे दर्शनोपयोग कहते है, ज्ञान साकार और दर्शन निराकार होता है।

मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला रूपी पदार्थों का ज्ञान। मन से अरूपी पदार्थो का भी परोक्ष ज्ञान किया जा सकता है।

श्रुत ज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है। जिस से शब्द और और अर्थ का सम्बन्ध जाना जाता है। जो मति ज्ञान के बाद होता है।

मति और श्रुत का परस्पर सम्बन्ध है। दोनो में कार्य कारण भाव है। मति ज्ञान कारण है और श्रुत ज्ञान कार्य है। दोनो ज्ञान निमित्तावलम्बी होने से परोक्ष हैं।



अवधि ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के विना आत्मा-द्वारा मर्यादा पूर्वक रूपी द्रव्य का ज्ञान।

मनः पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहाया के विना आत्मा द्वारा सज्ञी जीवो के मनोगत भावो को जानने वाला ज्ञान।

केवल ज्ञान—मूर्त, अमूर्त, सूक्ष्म, स्थूल आदि त्रिकाल-वर्ती समस्त पदार्थ और उन की सम्पूर्ण पर्यायो को एक साथ जानने वाला ज्ञान, अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थ और उनकी सम्पूर्ण पर्यायो को विना किसी बाह्य साधन के साक्षात् आत्मा द्वारा एक साथ जान लेने वाला ज्ञान।

अवधि आदि तीन ज्ञान प्रत्यक्ष है, अवधि और मन पर्याय विकल-अपूर्ण प्रत्यक्ष हैं, और केवल ज्ञान सकल-पूर्ण प्रत्यक्ष है।

मिथ्यात्व-सहचरित मति, श्रुत और अवधि क्रम से *मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान,* और *अवधि अज्ञान* कहे जाते हैं। यहाँ पर अज्ञान का अर्थ ज्ञान का अभाव नही, बल्कि कुत्सित ज्ञान समझना चाहिए। कुत्सित ज्ञान का अर्थ है, मिथ्या ज्ञान, विपरीत ज्ञान।

चक्षुर् दर्शन—चक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु द्वारा पदार्थों का जो सामान्य रूप से बोध होता है।

अचक्षुर् दर्शन—अचक्षुर्दर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर चक्षु को छोड कर शेष इन्द्रियो मे और मन मे पदार्थों का जो सामान्य रूप से वोध होता है।

अवधि दर्शन—अवधिदर्शनावरण कर्म के क्षयोपशम होने पर, इन्द्रिय और मन की सहायता के विना रूपी पदार्थों का जो सामान्य वोध होता है।

केवल दर्शन—केवल दर्शनावरण कर्म के क्षय होने पर साक्षात् आत्मा द्वारा सकल पदार्थों का जो सामान्य वोध होता है, उसे केवल दर्शन कहते है।



१०

बोल दशवाँ : कर्म आठ

१ ज्ञानावरण कर्म	५ आयुष् कर्म
२ दर्शनावरण कर्म	६ नाम कर्म
३ वेदनीय कर्म	७ गोत्र कर्म
४ मोहनीय कर्म	८ अन्तराय कर्म

व्याख्या

मिथ्यात्व, कषाय और योग आदि कारणो से जीव के द्वारा जो किया जाता है, वह कर्म है। जीव और कर्म का यह सम्बन्ध ठीक वैसा ही होता है, जैसा दूध और पानी का अथवा अग्नि और लोह पिण्ड का। आत्म-सम्बद्ध पुद्गल द्रव्य को कर्म कहते हैं।

यद्यपि जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि काल से है, परन्तु प्रत्येक का यह सम्बन्ध अनन्त काल तक रहेगा, सो वात नही



है। खान मे जो सुवर्ण है, उस का मिट्टी के साथ अनादि सम्बन्ध होने पर भी विशेष शोध-क्रिया के द्वारा जब उस से मिट्टी हटा देते हैं, तब वह शुद्ध सुवर्ण हो जाता है। यही सिद्धान्त कर्म और आत्मा पर भी लागू पडता है। कर्म-सहित जीव अशुद्ध और कर्म रहित जीव शुद्ध होता है। साधना के द्वारा जीव शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकता है।

शास्त्र मे मुख्य रूप से कर्म के दो भेद है—भाव कर्म और द्रव्य कर्म। राग, द्वेष और कषाय आदि भाव कर्म हैं। भावकर्म के निमित्त से कर्म वर्गणा के पुद्गलो की एक विशेष परिणति द्रव्य कर्म है। ऊपर जो कर्म के आठ भेद है, वे द्रव्य कर्म हैं।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म। जिस प्रकार आँख पर कपडे की पट्टी लपेटने से वस्तुओ के देखने मे रुकावट पडती है, उसी प्रकार ज्ञानावरण कर्म के प्रभाव से आत्मा को पदार्थों का विशेष बोध करने मे रुकावट पड़ती है।

जैसे सघन बादलो से सूर्य के ढक जाने पर भी उसका प्रकाश उतना अवश्य रहता है, कि जिस से दिन-रात का भेद समझा जा सके। वैसे ही कैसा भी प्रगाढ ज्ञानावरण कर्म हो, उस के रहते हुए भी आत्मा मे इतना ज्ञान तो अवश्य रहता है, कि जिस से वह जड पदार्थों से पृथक् किया जा सके।

दर्शनावरण कर्म—आत्मा की सामान्य बोधरूप दर्शन शक्ति को, आत्मा के दर्शन गुण को ढकने वाला कर्म। यह कर्म द्वार-पाल के समान है। जैसे द्वार पाल राजा के दर्शन करने मे रुका-

वट डालता है, वैसे ही यह कर्म भी पदार्थो का सामान्य बोध करने मे रुकावट डालता है

वेदनीय कर्म—जो अनुकूल और प्रतिकूल विषयो से उत्पन्न सुख और दु ख रूप में वेदन अर्थात् अनुभव किया जाय। यह कर्म मधु-लिप्त तलवार की धार को चाटने के समान है। चाटते समय क्षण भर को सुख, परन्तु बाद मे दु ख होता है। वेदनीय कर्म की भी यही स्थिति है। वेदनीय कर्म का दु.ख तो दु खरूप है ही, किन्तु सुख भी अन्तत दु ख रूप ही है।

मोहनीय कर्म—जो कर्म आत्मा को मोहित करता है, भले-बुरे के विवेक से शून्य बना देता है, जो सदाचार विमुख करता है, वह कर्म मोहनीय है। यह कर्म अन्य कर्मों से प्रबल कर्म है। यह मदिरा के सदृश होता है। जैसे मदिरा पीने वाला विवेक-विकल हो जाता है, वैसे ही मोहनीय के प्रभाव से जीव विवेक-शून्य हो जाता है। यह कर्म आत्मा के श्रद्धान एव चारित्र गुण का घात करता है।

आयुष् कर्म—जिस कर्म के रहते प्राणी नर, नारकादि रूप से जीता है, और पूरा होने पर मर जाता है। यह कर्म कारागार के समान है।

नाम कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव कभी नारक, कभी तिर्यञ्च, कभी मनुष्य और कभी देव कहलाता है। अथवा जो कर्म जीव को एकेन्द्रिय आदि नानाविध पर्यायो मे परिणत करता है। यह कर्म चित्रकार के समान माना गया है। जैसे चित्रकार नाना चित्र बनाता है, वैसे नाम कर्म भी जीव के नाना रूप बनाता है।

सम्यग् मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—यह सम्यक् और मिथ्या की मिश्र अवस्था है। इसमे विचारदृष्टि स्थिर नहीं हो पाती है। इसमें स्थित जीव तत्त्वो पर न एकान्त रुचि करता है, न एकान्त अरुचि।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—अविरत, त्याग-रहित। त्याग नहीं है, सम्यग्दृष्टि जिसकी, वह अविरत सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान। यह त्याग-शून्य सम्यग् दर्शन की अवस्था है, इसमें दृष्टि तो सम्यक् है, पर आचरण नहीं।

देश विरत गुण स्थान—जिसकी विरति (त्याग) पूर्ण न हो वह देश विरत, उसका गुणस्थान, देश विरत गुणस्थान। इसमे आत्मा में अंश-रूप में, हिंसादि से विरति का भाव आ जाता है।

प्रमत्त संयत गुण स्थान—प्रमाद-युक्त साधु के गुणस्थान को प्रमत्त संयत गुणस्थान कहते हैं। सर्व रूप से, पूर्ण रूप से चारित्र आ जाता है। सर्व विर ता है।

अप्रमत्त संयत गुण स्थान— साधु के। अप्रमत्त संयत गुण स्थान कहते माद से आत्मा और भी अधिक विशु

निवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्
और सम्पराय का अर्थ कषाय है
की अपेक्षा उक्त गुणस्थान में स्थू
कारण इसे बादर सम्पराय कहते

८ निवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान

६ अनिवृत्ति बादर सम्पराय गुण स्थान

१० सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान

११ उपशान्त मोह-गुण स्थान

१२ क्षीण-मोह गुण स्थान

१३ सयोगी केवली गुण स्थान

१४ अयोगी केवली गुण स्थान ।

व्याख्या

आत्मा की अशुद्धतम दशा से लेकर शुद्धतम दशा तक, ससार अवस्था से लेकर मुक्ति अवस्था तक और जीव की बद्ध स्थिति से लेकर मुक्त स्थिति तक—पहुँचने के लिए चौदह भूमिकाएं stages मानी गई है, जिन्हें गुण स्थान अर्थात् विकास भूमिकाएँ कहते है। गुणस्थान का अर्थ है—आत्मा की स्थिति-विशेष। गुण (आत्मशक्ति) के स्थान (क्रमिक विकास) को गुणस्थान कहा जाता है।

मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—मिथ्या (तत्त्व श्रद्धान के विपरीत) है, दृष्टि जिसकी, वह मिथ्या दृष्टि, उसका गुणस्थान मिथ्या दृष्टि गुणस्थान। यह जीव की निम्नतम दशा है।

सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—सम्यक्त्व के आस्वाद मात्र से सहित जो दृष्टि वह सास्वादन। सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान अनन्तानुबन्धी कषाय के उदय से सम्यक्त्व से पराङ्मुख मिथ्यात्व की ओर झुके हुए जीव की स्थिति।

सम्यग् मिथ्या दृष्टि गुण स्थान—यह आत्मा की संदिग्ध, दोलायमान अवस्था है। इसमे विचार-दृष्टि स्थिर नही हो पाती है। इसमे स्थित जीव तत्त्वो पर न एकान्त रुचि करता हैं, न एकान्त अरुचि।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—अविरत, त्याग-रहित। त्याग रहित है, सम्यग्दृष्टि जिसकी, वह अविरत सम्यग्दृष्टि, उसका गुणस्थान, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान। यह त्याग-शून्य सम्यग् विचार की अवस्था है, इसमें दृष्टि तो सम्यग् है, पर आचरण नही।

देश *विरत गुण स्थान*—जिसकी विरति (त्याग) पूर्ण न हो वह देश विरति, उसका गुणस्थान, देश विरत गुणस्थान। इसमे देश-रूप मे, अश-रूप मे, हिंसादि से विरति का भाव आ जाता है।

प्रमत्त संयत गुण स्थान—प्रमाद-युक्त साधु के गुणस्थान को प्रमत्त सयत गुणस्थान कहते हैं। इसमें सर्व रूप से, पूर्ण रूप से चारित्र आ जाता है। सर्व विरत बन जाता है।

अप्रमत्त सयत गुण स्थान—प्रमाद-मुक्त साधु के गुणस्थान को अप्रमत्त सयत गुण स्थान कहते हैं। इसमे प्रमाद का अभाव होने से आत्मा और भी अधिक विशुद्ध होता है।

निवृत्ति बादर सम्पराय गुणस्थान—बादर का अर्थ स्थूल है, और सम्पराय का अर्थ कषाय है। दशम गुण स्थान सूक्ष्म सम्पराय की अपेक्षा उक्त गुणस्थान मे स्थूल कषाय का अस्तित्व होने के कारण इसे बादर सम्पराय कहते हैं। निवृत्ति का अर्थ भिन्नता है।

अत प्रस्तुत गुण स्थान के सम ममय-वर्ती समस्त जीवो के अध्यवसाय भिन्न अर्थात् न्यूनाधिक शुद्धि वाले होते हैं।

अनिवृत्ति वादर सम्पराय गुण स्थान—प्रस्तुत गुण स्थान मे भी वादर सम्पराय अर्थात् स्थूल कषाय का अस्तित्व रहता है। अत यह भी वादर-सम्पराय कहलाता है। पूर्ववर्ती अनिवृत्ति शब्द का अर्थ अभिन्नता है। अत. नवम गुणस्थान मे जो जीव समसमय-वर्ती होते है, उन सवके अध्यवसाय एक समान अर्थात्, तुल्य शुद्धि वाले होते हैं।

सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान—सूक्ष्म रूप मे सम्पराय कषाय (मात्र लोभ) है जिसमें वह सूक्ष्म सम्पराय गुण स्थान। इसमे, चार कषायो मे से केवल सूक्ष्म लोभ रह जाता है।

उपशान्त मोह गुण स्थान—उपशान्त अर्थात् अन्तर्मुहूर्त के लिए शान्त हो गया है, मोह कर्म जिसमे, वह उपशान्त मोह, उसका गुणस्थान, उपशान्तमोह गुणस्थान। इसमें मोह (लोभ) का उपशम होता है, क्षय नही।

क्षीण मोह गुण स्थान—क्षीण, अर्थात् समूल नष्ट हो गया है, मोह कर्म जिसका, वह क्षीण मोह, उसका गुण स्थान, क्षीण मोह गुण स्थान। इसमे मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है।

सयोगी केवली गुण स्थान—योग का अर्थ मन, वचन और काय का व्यापार है। सयोगी अर्थात् योग युक्त है जो केवली, वह सयोगी केवली, उसका गुण स्थान, सयोगी केवली गुणस्थान, इसमे आत्मा सर्वज्ञ और सर्व-दर्शी हो जाता है।

अयोगी केवली गुण स्थान—अयोगी, योग रहित। योग-रहित है, केवली जिसमे, वह अयोगी केवली, उसका गुणस्थान, अयोगी केवली गुणस्थान। इसमे आत्मा शैलेश अर्थात् मेरु पर्वत के समान निष्कम्प हो जाता है। इसके बाद आत्मा गुणस्थानातीत होकर सर्वथा शुद्ध, मुक्त, परमात्मा बन जाता है।



१२

बोल बारहवाँ : पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषय—

१ जीव शब्द
२ अजीव शब्द
३ मिश्र शब्द

चक्षुष्-इन्द्रिय के पाँच विषय—

१ कृष्ण वर्ण
२ नीलवर्ण
३ रक्त वर्ण
४ पीतवर्ण
५ श्वेतवर्ण

घ्राण इन्द्रिय के दो विषय—

१ सुगन्ध
२ दुर्गन्ध

रसन इन्द्रिय के पाँच विषय—

१ अम्ल (खट्टा) रस
२ मधुर (मीठा) रस
३ कटु (कडवा) रस
४ कषाय (कसैला) रस
५ तिक्त (तीखा) रस

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय—

१ शीत स्पर्श
२ उष्ण स्पर्श
३ रूक्ष स्पर्श
४ स्निग्ध स्पर्श
५ लघु स्पर्श
६ गुरु स्पर्श
७ मृदु स्पर्श
८ कर्कश स्पर्श



व्याख्या

इन्द्रिय पॉच है, अत मुख्यतया उनके विपय भी पाँच हैं—*शब्द, वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श*। विस्तार की अपेक्षा से इनके तेईस विषय हो जाते हैं। पाँच इन्द्रिय के विषय तेईस और विकार दो सौ चालीस होते हैं।

मसार के समस्त पदार्थ दो विभागो मे विभक्त हैं—मूर्त और अमूर्त। जिसमें वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श हो, वह मूर्त, शेष सभी अमूर्त। मूर्त अर्थात् पौद्गलिक पदार्थ ही इन्द्रिय-ग्राह्य हो सकते हैं, अमूर्त नही,—जैसे आत्मा आदि।

प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय को ही ग्रहण करती है। दूसरे के विपय को नही। रूप को चक्षुप् ही ग्रहण करती है। घ्राण एव रसन आदि नही। सर्वत्र यही क्रम है।

विकार

पाँच इन्द्रियो के दो सौ चालीस विकार होते हैं और वे इस प्रकार समझने चाहिएँ—

श्रोत्र इन्द्रिय के तीन विषयो के १२ विकार—जीव शब्द, अजीव शब्द और मिश्र शब्द। तीन शुभ और तीन अशुभ। इन छह पर राग और छह पर द्वेप। ये १२ विकार हुए।

चक्षुप् इन्द्रिय के पाँच विपयो के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र। ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन ३० पर राग और ३० पर द्वेप। ये ६० विकार हुए।

घ्राण इन्द्रिय के दो विषयो के १२ विकार—२ सचित्त, २ अचित्त और २ मिश्र। इन छह पर राग और छह पर द्वेष। ये १२ विकार हुए।

रसन इन्द्रिय के पाच विषयो के ६० विकार—५ सचित्त, ५ अचित्त और ५ मिश्र। १५ शुभ और १५ अशुभ। ३० पर राग और ३० पर द्वेष। ये ६० विकार हुए।

स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषयो के ९६ विकार—८ सचित्त, ८ अचित्त और ८ मिश्र। २४ शुभ और २४ अशुभ, इस प्रकार ४८ पर राग और ४८ पर द्वेष। ये ९६ विकार हुए।

☆

१३
बोल तेरहवाँ : दश प्रकार का मिथ्यात्व

१ जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व
२ अजीव को जीव समझना मिथ्यात्व
३ धर्म को अधर्म समझना मिथ्यात्व
४ अधर्म को धर्म समझना मिथ्यात्व
५ साधु को असाधु समझना मिथ्यात्व
६ असाधु को साधु समझना मिथ्यात्व
७ ससार-मार्ग को मोक्ष मार्ग समझना मिथ्यात्व
८ मोक्ष-मार्ग को ससार-मार्ग समझना मिथ्यात्व

९ मुक्त को अमुक्त समझना मिथ्यात्व
१० अमुक्त को मुक्त समझना मिथ्यात्व

व्याख्या

जीव के विपरीत श्रद्धानरूप परिणाम को मिथ्यात्व कहा गया है। मिथ्यात्व ससार का बीज है, कारण है। जब तक आत्मा मे मिथ्यात्व का शल्य है, तब तक वह शुद्ध, निर्मल और मलमुक्त नही बन सकता।

अतत्त्व मे तत्त्व बुद्धि रखना, अधर्म मे धर्म बुद्धि रखना, अदेव मे देवबुद्धि रखना और अगुरु मे गुरु बुद्धि रखना, मिथ्यात्व है।

तत्व—यहाँ पर तत्व का अर्थ जीव, अजीव आदि तत्व समझना चाहिए।

देव—कर्म रूप शत्रु के विजेता, अष्टादश दोष-शून्य, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग अरिहत भगवान् देव है।

गुरु—कनक और कान्ता के त्यागी, पञ्च महाव्रत के पालने वाले, पञ्च समिति और तीन गुप्ति के धारक सन्त गुरु हैं।

धर्म—सर्वज्ञ भाषित, दयामय, विनय-मूलक, कर्म का नाश करने वाला और मोक्ष की ओर ले जाने वाला तत्व धर्म है।

यह वर्णन व्यवहार दृष्टि से किया गया है। निश्चय दृष्टि से तो आत्मा स्वय ही देव है, स्वयं ही गुरु है, और स्वयं ही धर्म है।

प्रस्तुत बोल मे दश प्रकार के मिथ्यात्व का वर्णन किया गया

है। जीव को जीव और अजीव को अजीव समझना सम्यक्त्व है। परन्तु जीव को अजीव समझना मिथ्यात्व है। इसी प्रकार अजीव को जीव समझना भी मिथ्यात्व है। यथार्थ-दृष्टि सम्यक्त्व है, और विपरीत-दृष्टि मिथ्यात्व है। सम्यक्त्व मोक्ष-हेतु है, और मिथ्यात्व ससार-हेतु।

इसी प्रकार धर्म और अधर्म, साधु और असाधु, ससार और मोक्ष तथा मुक्त और अमुक्त के विषय मे भी समझ ले। यदि इनमे यथार्थ दृष्टि है, तो वह सम्यक्त्व है, और यदि इनमे विपरीत दृष्टि है, तो वह मिथ्यात्व है।

*

१४

बोल चौदहवाँ : नव तत्त्व के ११५ भेद

नव तत्त्व

१	जीव तत्त्व	५	आस्रव तत्त्व
२	अजीव तत्त्व	६	सवर तत्त्व
३	पुण्य तत्त्व	७	निर्जरा तत्त्व
४	पाप तत्त्व	८	बन्ध तत्त्व

९ मोक्ष तत्त्व

व्याख्या

यथार्थ सद् वस्तु को तत्त्व कहते हैं। ये नव मूल तत्व हैं। जीव चेतनामय है। अजीव अचेतनामय है। पुण्य सुख देने वाला है। पाप दु:ख देने वाला है। आस्रव, शुभ और अशुभ कर्मों के



आने का द्वार है। सवर, आस्रव का निरोध है। एक देश से कर्मों का आत्मा से अलग होना निर्जरा है। बन्ध, आत्मा और कर्म पुद्गल का परस्पर सम्बन्ध है। मोक्ष, सम्पूर्ण कर्मों का क्षय है।

जीव तत्त्व के चौदह भेद

१	सूक्ष्म एकेन्द्रिय	के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
२	बादर एकेन्द्रिय	के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
३	द्वीन्द्रिय	के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
४	त्रीन्द्रिय	के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
५	चतुरिन्द्रिय	के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
६	असज्ञी पचेन्द्रिय	के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त
७	सज्ञी पञ्चेन्द्रिय	के दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त

व्याख्या

एकेन्द्रिय जीवो के दो भेद है—सूक्ष्म और बादर। व्यवहार दृष्टि से सूक्ष्म का अर्थ है—आँखो से न दीखने वाले जीव, और बादर का अर्थ है—स्थूल जीव। परन्तु शास्त्र की दृष्टि से जिन्हे सूक्ष्म नाम कर्म का उदय हो, वे सूक्ष्म और जिन्हे बादर नाम कर्म का उदय हो, वे बादर। बादर जीव के शरीर भी अलग-अलग नही देखे जाते। किन्तु वे समुदाय रूप मे ही देखे जाते हैं। सूक्ष्म जीव सपूर्ण लोक व्यापी है। बादर लोक के एक देश में हैं।

अजीव तत्त्व के चौदह भेद

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश

अधर्मास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश

आकाशास्तिकाय के तीन भेद—

१ स्कन्ध
२ देश
३ प्रदेश
१ दशवाँ काल

पुद्‌गलास्तिकाय के चार भेद—

१ स्कन्ध
२ देश

३ प्रदेश

४ परमाणु

व्याख्या

स्कन्ध—स्कन्ध के दो अर्थ है—एक तो अखण्ड वस्तु को स्कन्ध कहते हैं, दूसरा अलग-अलग अवयव एकत्रित होकर जो एक अवयवी अर्थात् एक समूह बन जाता है, उस समुदित अवस्था का नाम भी स्कन्ध है।

देश—स्कन्ध का एक कल्पित भाग

प्रदेश—निरश अश, अर्थात् जिस अश का दूसरा अश नही हो सकता। यह स्कन्ध का सूक्ष्मातिसूक्ष्म विभाग है।

परमाणु—प्रदेश और परमाणु एक ही हैं, परन्तु अन्तर इतना ही है कि जब तक वह स्कन्ध से सलग्न रहता है, तब तक प्रदेश और जब स्कन्ध से अलग हो जाता है, तब उसे परमाणु कहते है। "स्कन्धसयुक्त प्रदेश, स्कन्ध-विविक्त परमाणु।"

पुद्गलास्तिकाय मे स्कन्ध, देश, प्रदेश का व्यवहा परिलक्षित हो जाता है। किन्तु धर्मास्तिकाय आदि पदार्थो मे यह सब व्यवहार बुद्धि-परिकल्पित होता है। वे मूलत अखण्ड पदार्थ हैं। अखण्ड पदार्थ अनादि अनन्त है, वह किन्ही अवयवो से मिल कर नही बनता। अतः देश और प्रदेश आदि मात्र बुद्धि-परिकल्पित ही होते हैं, वास्

नही। इसी लिए धर्मास्तिकाय आदि का चौथा भेद परमाणु नही माना गया है। परमाणु वही प्रदेश होता है, जो स्कन्ध से अलग होता है। और धर्मास्तिकाय आदि के बुद्धि-परिकल्पित प्रदेश तीन काल मे कभी भी पृथक् नही होते।

काल के भेद-प्रभेद न बताकर मात्र 'दशवा काल' इतना ही कहा गया है। इसका कारण यह है, कि काल स्कन्ध नही है। अत उसके देश और प्रदेश आदि किसी प्रकार के भी भेद प्रभेद नही होते। तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवें अध्याय मे काल को समय-रूप कहा है, और वे समय अनन्त हैं।

पुण्य तत्त्व के नव भेद

१ अन्न पुण्य

२ पान पुण्य

३ स्थान पुण्य

४ शय्या पुण्य

५ वस्त्र पुण्य

६ मन पुण्य

७ वचन पुण्य

८ काय पुण्य

९ नमस्कार पुण्य



व्याख्या

पुण्य सुख-रूप होता है। पुण्य क्या है? शुभ योग से बँधने वाला शुभ कर्म। पुण्य से आरोग्य, सम्पत्ति, रूप, कीर्ति, दीर्घ आयुष्य और सुपरिवार आदि सुख के साधन, जीव को उपलब्ध होते है।

यहाँ पुण्य के जो नव भेद किए गए हैं, वे वास्तव मे पुण्य के भेद नही, किन्तु पुण्य के कारण है, जो नव विभाग मे विभक्त किए गए हैं।

जीव इन नव कारणो से पुण्य का बन्ध कर सकता है। किसी दुखित को अथवा सदाचारी व्यक्ति को स्थान, शय्या और वस्त्र देने से, शरीर से किसी की सेवा करने से, मधुर एव हितकर वाणी बोलने से, शुभ विचारो का चिन्तन करने से और किसी पूज्य पुरुष को वन्दन करने से।

पुण्य मनुष्यगति, देवगति, पचेन्द्रिय जाति, शुभ वर्ण, शुभ गन्ध, शुभ रस, शुभ स्पर्श, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय, यश आदि ४२ प्रकार से भोगा जाता है। पुण्य को बांधते समय दुख और भोगते समय सुख मिलता है। आत्म-विकास मे पुण्य कथचित् निमित्त है, अत उपादेय है, परन्तु साधना की उच्च अवस्था मे पुण्य भी हेय है।

पाप तत्त्व के अठारह भेद

१	प्राणातिपात	(हिंसा)
२	मृषावाद	(झूठ)
३	अदत्तादान	(चोरी)
४	मैथुन	(व्यभिचार)
५	परिग्रह	(ममताभाव)
६	क्रोध	
७	मान	
८	माया	
९	लोभ	
१०	राग	(मनोज्ञ वस्तु पर स्नेह)
११	द्वेष	(अमनोज्ञ वस्तु पर द्वेष)
१२	कलह	(क्लेश, झगडा)
१३	अभ्याख्यान	(झूठा कलंक लगाना)
१४	पैशुन्य	(दूसरे की चुगली करना)
१५	पर-परिवाद	(अवर्णवाद, निन्दा)
१६	रति-अरति	(शब्दादि मनोज्ञ पर प्रीति, अमनोज्ञ पर अप्रीति)

१७ माया मृषा (कपट-सहित मिथ्या भाषण)
१८ मिथ्यादर्शन शल्य (कुदेव, कुगुरु, और कुधर्म पर श्रद्धा)

व्याख्या

अशुभ योग से बँधने वाले अशुभ कर्म को पाप कहते है। क्योकि वह आत्मा को मलिन बनाता है। पाप के उदय से जीव को दुख. और पीडा मिलती है। पाप बाँधते समय सुखकर किन्तु भोगते समय दु खकर प्रतीत होता है।

अठारह प्रकार से पाप बाधा जाता है, और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, असातावेदनीय, मोहनीय, नरक गति, तिर्यंचगति, अशुभ वर्ण आदि ८२ प्रकार से भोगा जाता है। पापस्थानो के सेवन से जीव भारी हो जाता है, और नीच गति में जाता है। इनके त्याग से जीव हल्का हो जाता है, और उच्च गति प्राप्त करता है। पाप हेय ही होता है, कभी उपादेय नही होता।

पाप तत्त्व के ये अठारह भेद पाप बन्ध के कारण हैं। कारण मे कार्य का उपचार मानकर ही पापतत्व के भेद बताए गए हैं।

आस्रव तत्त्व के बीस भेद

पाँच अव्रत—

१ प्राणातिपात
२ मृषावाद

३ अदत्तादान
४ मैथुन
५ परिग्रह

पांच इन्द्रिय—

१ श्रोत्रेन्द्रिय प्रवृत्ति
२ चक्षुरिन्द्रिय प्रवृत्ति
३ घ्राणेन्द्रिय प्रवृत्ति
४ रसनेन्द्रिय प्रवृत्ति
५ स्पर्शनेन्द्रिय प्रवृत्ति

पाँच आस्रव—

१ मिथ्यात्व आस्रव
२ अविरति आस्रव
३ प्रमाद आस्रव
४ कषाय आस्रव
५ अशुभ योग आस्रव

तीन योग—

१ मन प्रवृत्ति
२ वचन प्रवृत्ति
३ काय प्रवृत्ति

दो अयतना—

१ भाण्डोपकरण अयतना से लेना, रखना
२ सूचि कुशाग्र मात्र, अयतना से लेना, रखना।

व्याख्या

जिन कारणो के द्वारा आत्मा मे कर्म मल आता है, वे कारण आस्रव कहलाते हैं। जीव रूप तालाब मे, कर्म-रज रूप जल, हिंसा, असत्य आदि आस्रव द्वार रूप नाली से आता रहता है। आस्रव से आत्मा मलिन बनता है क्योकि आस्रव से कर्मों का निरन्तर सञ्चय होता रहता है।

हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, व्यभिचार करना और परिग्रह का सचय करना—ये पाँच अव्रत रूप आस्रव है।

पाँच इन्द्रियो को यदि वश मे नही रखा जाता, उनका निग्रह नही किया जाता, उन पर सयम का अकुश नही रखा जाता, यदि वे खुली छोड दी जाती हैं, तो वे कर्मबन्ध मे निमित्त होने से आस्रवरूप हैं।

विपरीत श्रद्धान, अविरति, (असयम), प्रमाद, कषाय और अशुभ योग—ये पाचो आस्रव रूप हैं।

मन, वचन और काय की अशुभ प्रवृत्ति भी आस्रव रूप है। कर्म बन्धन का कारण है।

रजोहरण, पात्र आदि भाण्डोपकरण और कुश = तृण,

सूचि = सू ई पाट आदि अन्य कोई भी वस्तु यदि अविवेक से ली जाती है और अविवेक से रखी जाती है, तो यह भी आस्रव है।

इन वीस कारणो से आत्मा कर्मों का सचय करता है, अत ये आस्रव है। आस्रव ससार का कारण है। इससे ससार की वृद्धि होती है।

सवर के बीस भेद

पाच व्रत—

१ प्राणातिपात विरमण
२ मृषावाद विरमण
३ अदत्तादान विरमण
४ अब्रह्मचर्य विरमण
५ परिग्रह विरमण

पांच इन्द्रिय—

१ श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह
२ चक्षुरिन्द्रिय निग्रह
३ घ्राणेन्द्रिय निग्रह
४ रसनेन्द्रिय निग्रह
५ स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह

पाँच सवर—

१ सम्यक्त्व सवर
२ व्रत सवर
३ अप्रमाद सवर
४ अकपाय सवर
५ शुभयोग सवर

तीन योग—

१ मनो निग्रह
२ वचन निग्रह
३ काय निग्रह

दो यतना—

१ भाण्डोपकरण, यतना से लेना, रखना।
२ सूचि कुश तना लेना,

व्याख्या

आस्रव का निरोध सवर है।
है। सवर का अर्थ है, संवरण आ
आस्रव को रोका जाता है, वे सवर

जीव रूप तालाव में, कर्म-रज
रूप डाट के द्वारा रोकना, उसे सव



शुद्ध एव निर्मल बनता है। क्योंकि सवर की साधना से कर्म मल आत्मा मे नही आ पाता।

हिसा से विरति, असत्य से विरति, चोरी से विरति, अब्रह्मचर्य से विरति और परिग्रह से विरति—ये पाँच व्रत रूप सवर हैं। सवर धर्म का कारण है।

पाँच इन्द्रियो का निग्रह करना, उनकी अशुभ प्रवृत्ति को रोकना—यह पाँच इन्द्रियो का निरोधरूप सवर है। निगृहीत इन्द्रिय सवररूप है।

यथार्थ श्रद्धान, विरति (व्रत), अप्रमाद, अकपाय और शुभ योग— ये पाँच सवर है। क्योकि इनसे आत्मा की शुद्धि होती है।

मनोनिरोध, वचन-निरोध और काय-सयम—ये तीनो भी सवर रूप हैं। इन तीनो योगो का शुभत्व सवर है।

यदि तत्त्व-दृष्टि से देखा जाए, तो योग मात्र आस्रव है। भले ही वह शुभ हो, या अशुभ। शुभ योग पुण्यास्रव है और अशुभ योग पापास्रव। यहाँ शुभ योग को जो संवर कहा है, वह अशुभ से निवृत्ति-रूप है। अतः शुभ की शुद्धांग में लक्षणा है।

रजोहरण, पात्र आदि भण्डोपकरण तथा सूई आदि अन्य किसी भी वस्तु को यतना से लेना और यतना से रखना—यह भी सवर है।

इन बीस कारणो से आत्मा आस्रव को रोकता है। अतः ये संवर है। सवर मोक्ष का कारण है। इसकी शुद्ध साधना से ससार के बन्धन कट जाते हैं।

निर्जरा तत्त्व के बारह भेद

१ अनशन तप (उपवास आदि)
२ ऊनोदरी तप (भूख से कम खाना)
३ भिक्षाचरी तप (निर्दोष भिक्षा ग्रहण करना)
४ रसपरित्याग तप (सुस्वादु भोजन का त्याग)
५ कायक्लेश तप (वीरासन आदि करना)
६ प्रतिसलीनता तप (एकान्त शय्यासन)
७ प्रायश्चित तप (दोषो की आलोचनादि के द्वारा शुद्धि)
८ विनय तप (गुरु आदि की भक्ति)
६ वैयावृत्य तप (आचार्य आदि की सेवा)
१० स्वाध्याय तप (शास्त्र वाचनादि)
११ ध्यान तप (मन की एकाग्रता)
१२ व्युत्सर्ग तप (शरीर के व्यापार आदि का त्याग)

व्याख्या

कर्म-वर्गणा का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना, निर्जरा है। जीव रूप वस्त्र को कर्म रूप मल लगा हुआ है। ज्ञान रूप जल और तप रूप साबुन से उसको शुद्ध किया जाता है। यह निर्जरा तत्व को समझने के लिए एक रूपक है।

निर्जरा दो प्रकार की है—सकाम और अकाम। संवर-पूर्वक निर्जरा सकाम है, और विना विवेक के, विना संयम के जो कष्ट सहन किया जाता है, वह अकाम निर्जरा है।

बद्ध कर्मों का क्षय तप से होता है। अत. निर्जरा की व्याख्या करते हुए प्रस्तुत बोल मे अनशन आदि छह प्रकार का बाह्य तप और प्रायश्चित्त आदि छह प्रकार का आभ्यन्तर तप बताया गया है। यह तप कर्म-निर्जरा का हेतु है, कारण है। कारण मे कार्य का उपचार करने से यहाँ पर तप को निर्जरा कहा गया है।

कर्म परमाणुओ का आत्मा से एक देश से दूर हो जाना निर्जरा है, और सर्वथा कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है। देश मुक्ति निर्जरा और सर्व-मुक्ति मोक्ष है।

बन्ध तत्त्व के चार भेद

१ प्रकृति बन्ध
२ स्थिति बन्ध
३ अनुभाग बन्ध
४ प्रदेश बन्ध

व्याख्या

कर्म-वर्गणा और आत्मा का अन्योऽन्यानुप्रवेश रूप जो परस्पर सम्बन्ध है, वह बन्ध कहाता है। कषाय और योग से जीव कर्म-पुद्गलो को ग्रहण करता है। नीर और क्षीर की तरह अथवा अग्नि और लौह पिण्ड की तरह कर्म-पुद्गल और आत्म-



प्रदेशो का जो एकीभाव है, उसे बन्ध कहते है। जैसे कोई व्यक्ति शरीर पर तेल लगाकर धूल मे लेटता है, तो धूल उसके शरीर के चिपक जाती है। इसी प्रकार कषाय और योग से आत्म-प्रदेश मे जब कम्पन होता है, तब आत्मा के साथ कर्म का बन्ध होता है। बन्ध तत्व के चार भेद हैं—

प्रकृति बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल से ज्ञानावरणादि रूप भिन्न-भिन्न स्वभाव का अर्थात् शक्ति का पैदा होना।

स्थिति बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म पुद्गल में अमुक काल तक अपने स्वभाव का परित्याग न करते हुए जीव के साथ लगे रहने की काल मर्यादा।

अनुभाग बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म-पुद्गल मे तीव्र एव मन्द फल देने की शक्ति। इसको अनुभाव बन्ध और रस बन्ध भी कहते हैं।

प्रदेश बन्ध—जीव के द्वारा ग्रहण किए हुए कर्म - पुद्गल के परमाणुओ का कम या अधिक होना अर्थात् जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कर्म-स्कन्ध का सम्बन्ध होना।

इन चार बन्धो मे से प्रकृति बन्ध और प्रदेश बन्ध योग से होता है, और स्थिति-बन्ध तथा अनुभाग बन्ध कषाय से होता है।

कर्म बन्ध के पांच हेतु है— मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग। परन्तु मुख्य दो हैं—कषाय और योग।

मोक्ष तत्त्व के चार भेद

१	सम्यग् ज्ञान	३	सम्यक् चारित्र
२	सम्यग् दर्शन	४	सम्यक् तप

व्याख्या

नव तत्त्वो मे यह अन्तिम तत्व है। संवर और निर्जरा की साधना से आत्मा मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

बन्ध और बन्ध के कारणो का जब अभाव हो जाता है, और जब आत्म-विकास पूर्ण हो जाता है, तब आत्मा की उस सर्वथा और सर्वदा शुद्ध स्थिति को मोक्ष कहा जाता है। आत्म-गुणो का पूर्ण विकास ही वस्तुत मोक्ष है।

मोक्ष, मुक्ति और निर्वाण—एकार्थक शब्द हैं। कर्म-बद्ध आत्मा का कर्म-मुक्त हो जाना—यह मोक्ष है। मोक्ष आत्मा को एक पूर्ण अखण्ड शुद्ध अवस्था है। जहाँ पूर्णता होती है, वहाँ विभिन्न प्रकार के भेद एव प्रकार नही होते। इसीलिए प्रस्तुत मे मोक्ष तत्व के भेद बताते हुए उसकी प्राप्ति के चार साधन बताए गए है।

इस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के उपर्युक्त चार साधन शास्त्र मे कहे गए है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र और विवेक पूर्वक तप। जीव इन साधनो से मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

जीव का स्वभाव ऊर्ध्व गमन है। वह जो अधोगमन और तिर्यग् गमन करता है, उसमे जीव के कर्म कारण हैं। जैसे लेप-सहित तुम्बा जल में नीचे बैठ जाता है, परन्तु उस पर से मिट्टी

का लेप हट जाने से वही तुम्बा ऊपर अर्थात् जल की सतह पर आ जाता है। यही स्थिति आत्मा की भी है। कर्म सहित आत्मा नीचे अधोगति मे जाता है, और कर्म-रहित होने पर वही आत्मा अपनी सहज स्वभाव गति से मोक्ष पा लेता है।

एक बार जब आत्मा मुक्त हो जाता है, तो फिर वह कभी संसार मे नही आता। क्योंकि मुक्त आत्मा में ससार का कारण ही नही रहता। जैसे दग्ध बीज को कितना भी पानी दिया जाए, कितनी भी उर्वर भूमि मे बोया जाए, पर वह कभी अकुरित नही हो सकता, वैसे ही जिस आत्मा मे से बन्ध और बन्ध के कारणो का अभाव हो गया है, जो मुक्त हो गया है, वह फिर कभी संसार में नही आता।

जिन जीवो मे मोक्ष पाने की योग्यता है, वे ही मोक्ष प्राप्त करते हैं, उनको भव्य कहते हैं। जिन जीवो मे मोक्ष पाने की योग्यता नही, वे अभव्य हैं।

नव तत्त्वो मे मुख्य तत्त्व दो हैं—जीव और अजीव। शेष सभी तत्त्व जीव और अजीव की पर्याय-विशेष ही हैं। उनका अपना पदार्थ रूप से स्वतन्त्र कोई अस्तित्व नही।

जिसमे चेतना है, वह जीव है, और जिसमे चेतना नही, वह अजीव है। ये दोनो स्वतन्त्र तत्त्व हैं।

पुण्य और पाप का समावेश अजीव तत्त्व में हो जाता है। क्योंकि पुण्य और पाप पुद्गल रूप है। पुण्य शुभ पुद्गल और पाप अशुभ पुद्गल है।

अथवा इन दोनो का अन्तर्भाव आस्रव और वन्ध में भी किया जा सकता है। शुभ आस्रव और अशुभ आस्रव, तथा शुभ वन्ध और अशुभ बन्ध। इनमे शुभ पुण्य है और अशुभ पाप है।

आस्रव और वन्ध तत्व तो स्पष्ट ही पुद्गल हैं, पुद्गल की पर्याय विशेष ही हैं। अत इनका समावेश अजीव तत्व में हो जाता है। इस प्रकार पुण्य और पाप, आस्रव और वन्ध—ये चार तत्त्व अजीव तत्त्व मे आ जाते हैं।

संवर निर्जरा और मोक्ष—ये तीनो जीव की ही पर्याय-विशेप हैं। सवर जीव की आस्रव-निरोध रूप शुद्धि है। निर्जरा भी अगत कर्म-क्षय रूप एक प्रकार की शुद्धि ही है, और मोक्ष तो जीव की पूर्ण शुद्धि का ही नाम है। अत. सवर, निर्जरा और मोक्ष का समावेश जीव तत्त्व मे हो जाता है।

अतः सक्षेप मे दो ही तत्त्व है—जीव और अजीव। शेप इन दोनो का ही विस्तार है।

इन नव तत्त्वो को ज्ञेय, उपादेय और हेय इन तीन भागो मे भी विभक्त किया जा सकता है।

जीव और अजीव ज्ञेय हैं। पाप, आस्रव और वन्ध हेय है। पुण्य कथचित् हेय और कथञ्चित् उपादेय है। सवर, निर्जरा तथा मोक्ष उपादेय हैं। ज्ञेय वह है, जो जानने के योग्य है। उपादेय वह है, जो ग्रहण करने के योग्य है। हेय वह है, जो छोडने के योग्य है।



१५

बोल पन्द्रहवाँ : आत्मा आठ

१ द्रव्य आत्मा	५ ज्ञान आत्मा
२ कषाय आत्मा	६ दर्शन आत्मा
३ योग आत्मा	७ चारित्र आत्मा
४ उपयोग आत्मा	८ वीर्य आत्मा

व्याख्या

आत्मा एक शाश्वत तत्त्व है। वह अतीत मे भी था, वर्तमान में भी है, और भविष्य मे भी रहेगा। उसकी न उत्पत्ति है, और न उसका विनाश। फिर भी ऐसा नही कहा जा सकता, कि उसमे किसी प्रकार का परिवर्तन होता हो नही। द्रव्य से नित्य होकर भी आत्मा पर्याय से अनित्य है, परिवर्तनशील है। जीव के परिणामो का कोई अन्त नही है। प्रस्तुत बोल मे मुख्यत. आत्माओ की आठ स्थिति का वर्णन है।

द्रव्य आत्मा—आत्मा असख्यात प्रदेशो का समुदाय है। आत्मा अखण्ड है, वह कोई असख्य प्रदेशो मे सयुक्त रूप में नि[illegible] हुआ है। प्रदेश कल्पनामात्र बुद्धि-परिकल्पित हैं। ये प्र[illegible] से पृथक्तया विभाजित नही किए जा सकते।

कषाय आत्मा—कषाय चार हैं—क्रो[illegible] कषाय युक्त आत्मा को कषाय आ[illegible]

क्षीण कषाय आत्माओं को छोडकर शेष समस्त मसागी जीवो मे यह आत्मा होती है

योग आत्मा—योग मन, वचन एव काय का व्यापार है। योग-युक्त आत्मा को योग आत्मा कहते हैं। अयोगी केवली और सिद्धो मे यह आत्मा नही होती। शेष सभी जोव योग वाले हैं।

उपयोग आत्मा—उपयोग अर्थात् ज्ञान और दर्शन। उपयोग-युक्त आत्मा को उपयोग आत्मा कहते है। उपयोग आत्मा सिद्ध और समारो मभी जीवो मे होती है। क्योकि उपयोग आत्मा का लक्षण है। अतः उपयोग-शून्य कोई आत्मा नही हो मकती॰।

ज्ञान आत्मा—ज्ञान आत्मा का निज गुण है। ज्ञान-युक्त आत्मा को ज्ञान आत्मा कहते है। यह आत्मा सभी जीवो मे है। परन्तु जव ज्ञान का अर्थं सम्यग्ज्ञान करें, तव यह आत्मा केवल सम्यग्दृष्टि जीवो में रहेगी। क्योकि मिथ्या दृष्टि मे ज्ञान नही, अज्ञान होता है।

दर्शन आत्मा—दर्शन अर्थात् सामान्य वोध। दर्शन-युक्त आत्मा को दर्शन आत्मा कहते हैं। यह आत्मा मभी जीवो मे होता है। अथवा मम्यग्दर्शन रूप आत्मा सम्यग् दृष्टि जीवो मे ही होती है।

चारित्र आत्मा—चारित्र अर्थात् अशुभ से निवृत्ति और शुभ मे प्रवृत्ति। चारित्र युक्त आत्मा को चारित्र आत्मा कहते हैं। यह आत्मा विरति-सम्पन्न जीवो मे होता है।

वीर्य आत्मा—वीर्य अर्थात् जीव की शक्ति-विशेष। वीर्य-युक्त आत्मा को वीर्य आत्मा कहते हैं। यह आत्मा सभी जीवो मे होती है। अन्तर केवल इतना ही है, कि समारी आत्माओ का वीर्य, सकरण अर्थात् क्रियारूप वीर्य है, और सिद्ध आत्माओ का वीर्य, लब्धि अर्थात् शक्ति रूप वीर्य है।

★

१६

बोल सोलहवाँ : दण्डक चौवीस

सात नरक का एक दण्डक—

१	रत्नप्रभा	५	धूमप्रभा
२	शर्करा प्रभा	६	तम. प्रभा
३	बालुका प्रभा	७	महातम प्रभा
४	पङ्क प्रभा		

दश भवन-पति के दश दण्डक—

१	असुरकुमार	६	द्वीपकुमार
२	नागकुमार	७	उदधिकुमार
३	सुपर्णकुमार	८	दिशाकुमार
४	विद्युत्कुमार	०	पवनकुमार
५	अग्निकुमार	१०	स्तनितकुमार

पाच स्थावर के पाच दण्डक—



तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

१ द्वीन्द्रिय
२ त्रीन्द्रिय
३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पांच दण्डक—

१ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
१ मनुष्य का एक दण्डक
१ व्यन्तर देव का एक दण्डक
१ ज्योतिप देव का एक दण्डक
१ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मों का सचय करता रहता है। फिर उन शुभ एव अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियो में परिभ्रमण करता है। अत जहाँ जीव स्वकृत कर्मो का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं। अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस बोल मे २४ भागो मे विभक्त करके उन स्थानो का नाम दण्डक रख दिया गया है।

नरक गति का दण्डक एक, तिर्यञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, और देवगति के तेरह। इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस दण्डक होते हैं।



१६
बोल सोलहवाँ : दण्डक चौवीस

सात नरक का एक दण्डक—

१	रत्नप्रभा	५	धूमप्रभा
२	शर्करा प्रभा	६	तम प्रभा
३	वालुका प्रभा	७	महातम. प्रभा
४	पङ्क प्रभा		

दश भवन-पति के दश दण्डक—

१	असुरकुमार	६	द्वीपकुमार
२	नागकुमार	७	उदधिकुमार
३	सुपर्णकुमार	८	दिशाकुमार
४	विद्युत्कुमार	०	पवनकुमार
५	अग्निकुमार	१०	स्तनितकुमार

पांच स्थावर के पांच दण्डक—

१ पृथ्वी काय
२ अप् काय
३ तेजस् काय
४ वायुकाय
५ वनस्पति काय

तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक—

१ द्वीन्द्रिय
२ त्रीन्द्रिय
३ चतुरिन्द्रिय

अन्तिम पाच दण्डक—

१ तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय का एक दण्डक
१ मनुष्य का एक दण्डक
१ व्यन्तर देव का एक दण्डक
१ ज्योतिष देव का एक दण्डक
१ वैमानिक देव का एक दण्डक

व्याख्या

जीव अपनी शुभ और अशुभ प्रवृत्ति के कारण शुभाशुभ कर्मो का संचय करता रहता है। फिर उन शुभ एव अशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए चार गतियो मे परिभ्रमण करता है। अत जहाँ जीव स्वकृत कर्मो का फल भोगता है, उसे दण्ड कहते हैं। अर्थात् कर्म फल या दण्ड भोगने के स्थान को इस वोल मे २४ भागो मे विभक्त करके उन स्थानो का नाम दण्डक रख दिया गया है।

नरक गति का दण्डक एक, तिर्यञ्च गति के नव, मनुष्यगति का एक, और देवगति के तेरह। इस प्रकार सब मिलाकर चौबीस दण्डक होते है।





१७

बोल सतरहवाँ : लेश्या छह

१	कृष्ण लेश्या	४	तेजो लेश्या
२	नील लेश्या	५	पद्म लेश्या
३	कापोत लेश्या	६	शुक्ल लेश्या

व्याख्या

जीव के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते है। अथवा जिस परिणाम से कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो, उसे लेश्या कहते हैं। लेश्या के दो भेद हैं -भाव और द्रव्य। भाव लेश्या विचार रूप और द्रव्य लेश्या पुद्गल रूप होती है।

अथवा लेश्या के दो भेद हैं —धर्म लेश्या और अधर्म लेश्या। पहले की तीन अधर्म लेश्या और अगली तीन धर्म लेश्या। इनको अशुभ लेश्या और शुभ लेश्या भी कहते हैं।

कृष्ण लेश्या —

अतिरौद्र. सदा क्रोधी, मत्सरी धर्म-वर्जितः।
निर्दयी वैर-सयुक्त, कृष्ण–लेश्याऽधिको नर ॥

कृष्ण लेश्या वाले जीव के विचार अत्यन्त क्रूर होते है, वह क्रोधी होता है, वह ईर्ष्यालु होता है, उसका जीवन धर्म-शून्य होता है. वह दया रहित होता है, और उसके मन मे सदा वैर-विरोध की भावना रहती है।

नील लेश्या—

अलसो मन्द-बुद्धिश्च, स्त्री-लुब्ध पर-वञ्चक ।
कातरश्च सदा मानी, नील-लेश्याऽधिको नर ॥

नील लेश्या वाला जीव आलसी, मन्द बुद्धि वाला, कामुक, मायावी, डरपोक और सदा अभिमानी होता है।

कापोत लेश्या—

शोकाकुल: सदा रुष्ट, पर निदात्मशंसक ।
सग्रामे प्रार्थते मृत्यु; कापोतलेश्याधिकोनर ॥

कापोत लेश्या वाला जीव शोक से व्याकुल रहता है, सदा क्रोध में भरा रहता है। पर-निन्दा और स्व-प्रशसा किया करता है, और सग्राम मे जाकर कायर बन जाता है, मृत्यु चाहता रहता है।

तेजो लेश्या—

विद्यावान् करुणा-युक्त:, कार्याऽकार्य विचारक ।
लाभाऽलाभे सदा प्रीत, तेजोलेश्याधिको नर ॥

तेजोलेश्या वाला जीव विद्या-प्रेमी होता है, करुणाशील होता है, कर्तव्य और अकर्तव्य में विवेक रखता है, और लाभ तथा अलाभ मे सदा प्रसन्न रहता है।

पद्म लेश्या—

क्षमावान् निरतस्त्यागी, गुरु-देवेषु भक्तिमान् ।
शुद्ध-चित्त सदाऽऽनन्दी; पद्म-लेश्याधिको नर ॥

पद्म लेश्या वाला जीव क्षमाशील और त्याग-निरत होता है, देव और गुरु की भक्ति करता है, उसका चित्त सदा प्रसन्न रहता है, और वह सदा प्रमुदित रहता है।

शुक्ल लेश्या—

राग-द्वेष-विनिर्मुक्त, शोक-निन्दा-विवर्जित।
परमात्मभावसम्पन्नः, शुक्ल-लेश्याधिको नरः॥

शुक्ल लेश्या वाला जीव राग और द्वेष से रहित होता है। अथवा मन्द राग और मन्द द्वेष वाला होता है। वह शोक और निन्दा के वेग से भी परे रहता है। और परम शुक्ल लेश्या वाला अन्तत परमात्म-दशा को प्राप्त कर लेता है। यह आत्मा परम शुद्ध आत्मा होता है।

*

१८
बोल अठारहवाँ : दृष्टि तीन

१ सम्यग्दृष्टि
२ मिथ्यादृष्टि
३ मिश्रदृष्टि

व्याख्या

यहाँ पर दृष्टि का अर्थ है—दर्शन। ससार मे जितने भी जीव हैं, उनमे इन तीन दृष्टियो मे से एक न एक दृष्टि अवश्य मिलती है। ये दृष्टियाँ समुच्चयरूप मे चारों गतियो के जीवो मे उपलब्ध होती है।

सम्यग् दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से अथवा क्षयोपशम से आत्मा में जो एक आत्मानुलक्षी शुद्ध पारणाम उत्पन्न होता है, उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

मिथ्या दृष्टि—मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से जीव में जब अदेव मे देव बुद्धि, अधर्म मे धर्म बुद्धि और अगुरु मे गुरुबुद्धि हो जाती है, तब उस दृष्टि को मिथ्या दृष्टि कहते हैं।

मिश्र दृष्टि—मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से आत्मा मे जो सत्यासत्य मिश्रित दोलायमान स्थिति पैदा होती है, उसे मिश्र दृष्टि कहते हैं। इस दृष्टि मे जीव न एकान्त सत्योन्मुख होता है, और न एकान्त असत्योन्मुख। किन्तु सत्य और असत्य से विलक्षण एक भिन्न मिश्रित-सी अवस्था होती है।



१६
बोल उन्नीसवाँ : ध्यान चार

१ आर्त ध्यान
२ रौद्र ध्यान
३ धर्म ध्यान
४ शुक्ल ध्यान

व्याख्या

चित्त को एकाग्र करना ध्यान है। अपनी चिन्तन-धारा को अनेक विषयो से समेटकर किसी एक वस्तु या विषय पर एकाग्र कर लेना, स्थिर कर लेना ही ध्यान है।



ध्यान चार प्रकार का है। पहले दो ससार के कारण हैं। अत वे हेय हैं, त्याज्य है। अन्त के दो मोक्ष के कारण हैं। अत. वे उपादेय हैं, ग्रहण करने योग्य हैं।

ध्यान, ध्याता और ध्येय—इसको त्रिपुटी कहते है। ध्यान करने वाला ध्याता होता है। ध्येय अर्थात् जिसका ध्यान किया जाए, जिसका चिन्तन किया जाए। ध्याता ध्यान के द्वारा ध्येय को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इसको ध्यान की साधना कहते हैं।

ध्यान के दो भेद है—अशुभ और शुभ। पहले के दो ध्यान अशुभ हैं, पिछले दो शुभ है।

आर्त ध्यान—मनोज्ञ एव प्रिय वस्तु के वियोग मे और अमनोज्ञ एवं अप्रिय वस्तु के संयोग में, चित्त मे जो एक प्रकार की अनवरत एकाग्र चिन्तना होती है, उसको आर्तध्यान कहते हैं।

रौद्र ध्यान—हिंसा मे, असत्य मे, चोरी में और धन आदि के ममत्वभाव मे, मन को एकाग्र करना, मन को जोडना, रौद्र ध्यान है। इसमें परिणाम अत्यन्त क्रूर होते है। इसमे, जीव के रुद्र अर्थात् भयंकर एव निर्दय भाव रहते हैं, अत इस को रौद्र ध्यान कहते हैं।

धर्म ध्यान—जिसमे श्रुत और चारित्र रूप धर्म का चिन्तन किया जाता है, उसे धर्म ध्यान कहते है। सूत्रार्थ का चिन्तन करना, व्रतो का विचार करना, तथा समार की असारता का मनन करना—यह धर्म ध्यान है।

शुक्ल ध्यान—जो ध्यान कर्म-मल को तीव्र गति से दूर करता है, वह शुक्ल ध्यान है। अथवा पर अवलम्बन के विना निर्मल आत्म-स्वरूप का अखण्ड-चिन्तन शुक्ल ध्यान है।



२०

बोल बीसवाँ षड्द्रव्य के तीस भेद

धर्मास्तिकाय के पाँच भेद

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, लोक-व्यापी
५ गुण से चलन गुण, जल मे मछली का दृष्टान्त

अधर्मास्तिकाय के पाँच भेद

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श रहित, अरूपी, अजीव,

५ गुण से स्थिर गुण, श्रान्त पथिक को छाया का दृष्टान्त

आकाशास्ति काय के पाँच भेद

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से लोकालोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, अजीव, शाश्वत, सर्व-व्यापी
५ गुण से अवकाश-दान गुण, दूध मे बताशे का दृष्टान्त।

काल द्रव्य के पाँच भेद

१ द्रव्य से एक
२ क्षेत्र से अढाई द्वीप प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, शाश्वत, अढाई द्वीप वर्ती
५ गुण से वर्तना गुण, नये को पुराना करे, नये पुराने कपड़े का दृष्टान्त

जीवास्तिकाय के पाँच भेद

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गध-रस-स्पर्श-रहित, अरूपी, जीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से उपयोग गुण, चन्द्र की कला का दृष्टान्त

पुद्‌गलास्तिकाय के पाँच भेद

१ द्रव्य से अनन्त
२ क्षेत्र से लोक-प्रमाण
३ काल से आदि-अन्त-रहित
४ भाव से वर्ण-गध-रस-स्पर्श-सहित, रूपी, अजीव, शाश्वत, लोकवर्ती
५ गुण से पूरण-गलन गुण, मिलते बिखरते बादल का दृष्टान्त

व्याख्या

प्रस्तुत बोल मे पड् द्रव्य का निरूपण किया गया है। द्रव्य, पदार्थ और वस्तु—ये एकार्थवाची शब्द हैं। जिसमें गुण और पर्याय रहते है, उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्य का सहभावी धर्म गुण



कहलाता है, और द्रव्य का क्रमभावी धर्म पर्याय कहलाता है। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनो परस्पर सम्बद्ध हैं। द्रव्य के विना गुण और पर्याय नही, और गुण एव पर्याय के विना द्रव्य नही। गुण नित्य होता है, और पर्याय क्षणिक।

चेतना-शून्य तत्त्व को अजीव कहते हैं। अजीव के पाँच भेद हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और काल।

धर्म—गति-शील तत्त्वो की गति मे सहायक जो तत्त्व, वह धर्म है। गति-शक्ति जीव और पुद्गल की अपनी है, परन्तु धर्म उसमे निमित्त कारण, सहकारी कारण बन जाता है। धर्म के विना जीव और पुद्गल स्वभावत गति-शील होते हुए भी गति नही कर सकते। जैसे मछली मे तैरने की शक्ति होने पर भी वह जल के विना नही तैर सकती।

अधर्म—स्थितिशील तत्त्वो की स्थिति में सहायक जो तत्त्व, वह अधर्म है। जीव और पुद्गल दोनो मे स्थित होने का अपना स्वभाव है, पर उसमे निमित्त अधर्म है। जैसे पथिक के लिए वृक्ष की छाया। ठहरता तो पथिक स्वयं ही है, परन्तु छाया उसमे निमित्त कारण, सहकारी कारण बन जाती है। ठीक इसी प्रकार जीव एवं पुद्गल मे ठहरने का स्वभाव है, परन्तु अधर्म उसमे निमित्त है। विना इसके कोई भी पदार्थ स्थिर नही हो सकता।

आकाश—जो अवकाश देता है, आश्रय देता है, वह आकाश है। आकाश सबका आधार है, शेष सभी द्रव्य आधेय हैं। व्यवहार दृष्टि से त्रस एव स्थावर जीवो का आधार पृथ्वी, पृथ्वी का आधार जल, जल का आधार वायु और वायु का आधार आकाश है, आकाश का अन्य कोई आधार नही। वह आप ही अपना आधार है।

क्योकि उससे बडा कोई पदार्थ नही। तत्वत आकाश ही पृथ्वी जल, वायु, आदि सभी जीव-अजीव को अपने मे अवकाश देता है, आश्रय देता है, जैसे दूध से भरे कटोरे मे बताशा। जिस प्रकार दूध मे बताशा समा जाता है, वैसे ही सब पदार्थ आकाश मे समाये हुए है।

आकाश के दो भेद है—लोकाकाश और अलोकाकाश। जहाँ तक धर्म और अधर्म आदि हैं, वह लोकाकाश, शेप अलोकाकाश।

काल—काल अर्थात् समय। जो पुरानी वस्तु को नयी और नयी को पुरानी करता है, वह काल है। समय, पल, घडी, दिन और रात-ये सब काल के कार्य है। पदार्थों की जो प्रतिक्षण पर्याय बदल रही है, उसका निमित्त अर्थात् सहकारी कारण काल है।

जीव—चेतनामय तत्व जीव है। उपयोग जीव का लक्षण है। यह लक्षण ससारी जीव और मुक्त जीव सभी में घटित होता है। जीव कभी उपयोग—शून्य नही हो सकता। जीव के मुख्य रूप मे दो भेद हैं—ससारी और मुक्त। समग्र चैतन्य तत्व का इन दो भेदो मे समावेश हो जाता है।

पुदगल—जिसमें पूरण, अर्थात् मिलन और गलन अर्थात् पृथक् भवन का स्वभाव है, वह पुद्गल है। जो मिलता है, बिछुडता है, वह पुद्गल है। जिसमे वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श—ये चार गुण हो, वह पुद्गल है। 'पुद्' और 'गल्' इन दो धातुओ के संयोग से पुद्गल शब्द बना है। जिसका अर्थ है सश्लेप और विश्लेप। ईंट, पत्थर, लकडी, मिट्टी आदि—ये सब पुद्गल हैं।

इन षड् द्रव्यो में एक काल को छोड कर शेप सभी द्रव्य अस्ति-काय-रूप है। अस्ति अर्थात् प्रदेश, काय अर्थात् समूह।

ये पांचों द्रव्य, प्रदेश-समूहात्मक है। अतः ये अस्तिकाय कहे जाते हैं। परन्तु काल के प्रदेश नही होते। अतः काल अस्तिकाय नही है। अस्तिकाय द्रव्य पांच हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, जीव और पुद्गल।

★

२१

बोल इक्कीसवाँ : राशि दो

१ जीव राशि
२ अजीव राशि

व्याख्या

राशि का अर्थ है—समूह। प्रस्तुत बोल मे ससार की समस्त वस्तु—चेतन और अचेतन—दो समूहो मे विभक्त हैं—जीव राशि और अजीव राशि। संसार मे कोई वस्तु ऐसी शेष नही रह जाती, जो इन दो राशि मे न आ सके। संसारी से लेकर सिद्ध तक, और सिद्ध से लेकर ससारी जीव तक, समस्त चेतनामय शक्तियों का समावेश हो जाता है—जीव राशि मे। धर्म, अधर्म, आदि समस्त जड तत्वों का समावेश हो जाता है—अजीव राशि मे।

जीवराशि—जो चेतना-शक्ति से युक्त हो, वह जीव है। जीवो की राशि को, जीवो के समुदाय को जीव राशि कहते है। जीव के दो भेद हैं—बद्ध और मुक्त। जीव राशि मे दोनो प्रकार के जीवो का समावेश हो जाता है।

अजीवराशि—चेतना रहित जितने भी तत्त्व है, उनके समुदाय को अजीव राशि कहते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल—ये सब अजीव राशि में आ जाते हैं।



२२

बोल बाईसवाँ : श्रावक के बारह व्रत

पाँच अणुव्रत—

१ अहिंसा अणुव्रत
२ सत्य अणुव्रत
३ अस्तेय अणुव्रत
४ ब्रह्मचर्य अणुव्रत
५ अपरिग्रह अणुव्रत

तीनगुण व्रत—

१ दिशा परिमाण व्रत
२ भोगोपभोग परिमाण व्रत
३ अनर्थदण्ड विरमण व्रत

चारशिक्षा व्रत—

१ सामायिक व्रत
२ देशावकाशिक व्रत

३ पौषध व्रत
४ अतिथि-संविभाग व्रत

व्याख्या

शास्त्र मे सीमितरूप मे पाले जाने वाले अहिंसा आदि धर्म को 'श्रावक धर्म' कहा है। गृहस्थ धर्म का अर्थात् गृहस्थोचित सम्यक् आचार का पालन करने वाला पुरुष 'श्रावक' और स्त्री 'श्राविका' कहलाती है।

श्रावक शब्द श्रवण अर्थ वाले 'श्रु' धातु पर से बना है। जो श्रवण करे, अर्थात् जो आत्म-कल्याण के प्रशस्त मार्ग को सुने, वे श्रावक और श्राविका कहे जाते हैं। इनको उपासक और उपासिका भी शास्त्र में कहा गया है।

पाँच अणुव्रत—

हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह—ये प्रसिद्ध पाप हैं। श्रावक का कर्तव्य है कि वह इन पांच पापो से बचकर चले। परन्तु गृहस्थ साधक इन पांच पापो का सर्वथा परित्याग नही कर सकता है।

वह स्थूल हिंसा का त्याग कर सकता है, सूक्ष्म हिंसा का नही। पांच स्थावर जीवो की हिंसा का त्याग वह नही कर सकता। त्रस जीवो मे भी वह निरपराध जीव की हिंसा का त्याग कर सकता है, सापराध की हिंसा का नही। अतः उसका अहिंसा व्रत, साधु के महाव्रत को अपेक्षा अणुव्रत अर्थात् छोटा व्रत कहाता है।



इसी प्रकार वह श्रावक स्थूल असत्य को, स्थूल स्तेय को, स्थूल अब्रह्म को और स्थूल परिग्रह को छोड सकता है; सूक्ष्म का त्याग नही कर सकता। क्योकि वैसा करने पर उसका गृहस्थ जीवन चल मकना कठिन है। चतुर्थ व्रत के रूप मे यदि वह पुरुप है, तो स्व-दार-सन्तोप-व्रत और यदि वह नारी है, तो स्व-पति-मन्तोप-व्रत ग्रहण करता है। पञ्चम व्रत के रूप मे वह-अपने परिग्रह का परिमाण निर्धारित करता है।

तीन गुणव्रत—गुण-व्रत का अर्थ है—अहिंसा आदि पाँच मूल व्रतो को पुष्ट करने वाले, और उनमे अभिवृद्धि करने वाले नियम।

चार दिशा, चार विदिशा और ऊर्ध्वदिशा तथा अधोदिशा—इन दश दिशाओ का परिमाण निर्धारित करना, ताकि सीमा से वाहर, मर्यादा से वाहर गमन और आगमन न हो। यह दिशा परिमाण गुण व्रत है, इम मे क्षेत्र की मर्यादा की जाती है।

उपभोग अर्थात् एक बार भोग के काम मे आने वाली खाने-पीने आदि की वस्तु और परिभोग अर्थात् वार-बार भोग के काम मे आने वाली पहनने-ओढने आदि की वस्तु—इनकी मर्यादा करना। जैसे आनन्द श्रावक ने छब्बीस वोल की मर्यादा की थी। यह उपभोग परिभोग परिमाण गुण व्रत है।

श्रावक प्रयोजन के लिए तो हिंसा आदि करता है, परन्तु विना प्रयोजन के हिंसा आदि का उसको परित्याग होता है। अत. अनर्थदण्ड का, अर्थात् विना प्रयोजन के हिंसा आदि का त्याग, अनर्थदण्ड-विरमण गुणव्रत है।

चार शिक्षा व्रत—

शिक्षा का अर्थ है, साधु-जीवन-का अभ्यास। धीरे-धीरे

साधु-जीवन योग्य साधना की ओर अग्रसर होना, इस शिक्षा व्रत का मुख्य उद्देश्य है।

नित्य प्रति उभय काल मे सामायिक करना, सामायिक शिक्षा व्रत है। दिशाव्रत मे जो क्षेत्र-मर्यादा की थी, उसको और अधिक सीमित करना, देशावकाशिक शिक्षा व्रत है। पर्व दिवसो मे पौषध व्रत एव दयाव्रत करना पौषध शिक्षा व्रत है। और द्वार पर आए साधु, श्रावक, सम्यग्दृष्टि आदि अतिथि को सम्मान पूर्वक यथाशक्ति दान देना, अतिथि सविभाग शिक्षा व्रत है। ये चार शिक्षा व्रत हैं। इस प्रकार श्रावक के बारह व्रत हैं।



२३

बोल तेईसवाँ : साधु के पाँच महाव्रत

१ अहिसा महाव्रत
२ सत्य महाव्रत
३ अस्तेय महाव्रत
४ ब्रह्मचर्य महाव्रत
५ अपरिग्रह महाव्रत

व्याख्या

साधु को शास्त्र मे 'श्रमण' कहा गया है। अत. साधु-धर्म को 'श्रमण-धर्म' कहना उचित ही है। श्रावक धर्म से आगे की कोटि श्रमण-धर्म की है। साधु होने के लिए केवल बाह्य वेष बदल

लेना ही पर्याप्त नही है, बल्कि उसके लिए जीवन को ही बदलना पडता है। वाने के माथ वान भी वदलनी पड़ती है, तभी सच्ची साधुता प्राप्त होती है।

ससार में पाँच महापाप है—हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी), अब्रह्मचर्य और परिग्रह (आसक्ति)।

साधु इन पाचो महापापो का त्याग तीन करण और तीन योग से करता है। करण का अर्थ है—कृत, कारित और अनुमत। अर्थात् करना, कराना और अनुमोदन करना। योग का अर्थ है—मन, वचन और काय।

साधु इन पाँचो महापापो को न स्वयं करता है, न दूसरो से करवाता है, और न करने वालो का अनुमोदन करता है—मन से, वचन से और काय से। अत. साधु के इन व्रतो को शास्त्र मे महाव्रत कहा गया है।

महाव्रत का अर्थ है—बडी प्रतिज्ञा, महान प्रतिज्ञा, पूर्ण प्रतिज्ञा। उसमे किसी भी प्रकार की स्थूल एव सूक्ष्म की छूट नही होती।

साधु पूर्ण अहिंसा, पूर्ण सत्य, पूर्ण अस्तेय, पूर्ण ब्रह्मचर्य और पूर्ण अपरिग्रह का परिपालन करता है। अत उसकी प्रतिज्ञा को महाव्रत कहना उचित ही है।

★

२४

बोल चौबीसवाँ : भंग ४६

अंक ११ भग नव—एक करण, एक योग से कथन—

१ करूँ नही मन से
२ करूँ नही वचन से
३ करूँ नही काय से
४ कराऊँ नही मन से
५ कराऊँ नही वचन से
६ कराऊँ नही काय से
७ अनुमोदूँ नही मन से
८ अनुमोदूँ नही वचन से
९ अनुमोदूँ नही काय से

अंक १२ भग नव—एक करण, दो योग से कथन—

१ करूँ नही मन से, वचन से
२ करूँ नही मन से, काय से
३ करूँ नही वचन से, काय से
४ कराऊँ नही मन से, वचन से
५ कराऊँ नही मन से, काय से

६ कराऊँ नही वचन से, काय से
७ अनुमोदूँ नही मन से, वचन से
८ अनुमोदूँ नही मन से, काय से
९ अनुमोदूँ नही वचन से, काय से

अक १३ भग तीन—एक करण, तीन योग से कथन—

१ करूँ नही मन से, वचन से, काय से
२ कराऊँ नही मन से, वचन से, काय से
३ अनुमोदूँ नही मन से, वचन से काय से

अक २१ भग नव—दो करण, एक योग से कथन—

१ करूँ नही, कराऊँ नही, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, वचन से
३ करूँ नही, कराऊँ नही, काय से
४ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
५ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
६ करूँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से
७ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मन से
८ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
९ कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, काय से

अक २२ भग नव—दो करण, दो योग से कथन—

१ करूँ नही कराऊँ नही मन से वचन से
२ करूँ नही कराऊँ नही मन से काय से
३ करूँ नही कराऊँ नही वचन से काय से
४ करूँ नही अनुमोदूँ नही मन से वचन से
५ करूँ नही अनुमोदूँ नही मन से काय से
६ करूँ नही अनुमोदूँ नही वचन से काय से
७ कराऊँ नही अनुमोदूँ नही मन से वचन से
८ कराऊँ नही अनुमोदूँ नही मन से काय से
९ कराऊँ नही अनुमोदूँ नही वचन से काय से

अक २३ भग तीन—दो करण, तीन योग से कथन—

१ करूँ नही कराऊँ नही मन से वचन से काय से
२ करूँ नहीं अनुमोदूँ नही मन से वचन से कायसे
३ कराऊँ नहीं अनुमोदूँ नही मन से वचनसे कायसे

अक ३१ भग तीन—तीन करण, एक योग से कथन—

१ करूँ नही कराऊँ नही, अनुमोदूँ नहीं, मन से
२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचन से
३ करूँ नहीं, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नहीं, काय से

अक ३२ भंग तीन—तीन करण, दो योग से कथन—

१ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मनसे, वचनसे
२ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, मनसे, कायसे
३ करूँ नही, कराऊँ नही, अनुमोदूँ नही, वचनसे कायसे

अक ३३—भग एक-तीन करण, तीन योग से कथन—

करूं नही, कराऊं नही, अनुमोदूँ नहीं,
मन से, वचन से, काय से ।

सेरो-यन्त्र

अक	११	१२	१३	२१	२२	२३	३१	३२	३३
भग	६	६	३	६	६	३	३	३	१
करण	१	१	१	२	२	२	३	३	३
योग	१	२	३	१	२	३	१	२	३
सर्व भंग	६	१८	२१	३०	३६	४२	४५	४८	४६

८१ सेरी में से रुकने वाली सेरी क्रमश

६	१८	२७	१८	३६	५४	२७	५४	८१

व्याख्या

शास्त्र मे दो प्रकार की परिज्ञा अर्थात् बुद्धि कही कई है—ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा। ज्ञपरिज्ञा से पदार्थों का स्वरूप जाना जाता है, कि कौन पदाथ कैसा है ? हेय है या उपादेय ? और प्रत्याख्यान परिज्ञा से हेय वस्तु का त्याग और उस की पद्धति का विचार है। प्रस्तुत बोल मे प्रत्याख्यान-परिज्ञा का स्वरूप बताया है, कि हेय वस्तु का त्याग कैसे करना चाहिए ?

पाप का परित्याग जीवन की साधारण घटना नही है, कि किसी हेय वस्तु को छोड दिया और बस त्याग हो गया। इस प्रकार के त्याग तो मिथ्यादृष्टि जीव भी करते रहते हैं। किन्तु वह त्याग प्रत्याख्यान कोटि मे नही आता। प्रत्याख्यान कोटि के लिए आवश्यक है, कि कृत, कारित और अनुमत तथैव मन, वचन और काय के स्वरूप का तथा इनके पारस्परिक सम्बन्धो का गम्भीरता से विचार किया जाए। यही विचार प्रस्तुत बोल मे किया गया है।

भग का अर्थ है, विकल्प, प्रकार, एवं विभाग रूप रचना-विशेष। इस अर्थ के अनुसार प्रत्याख्यान के ४६ भग है। अन्तिम ३३ के अक का भग पूर्ण है, क्योकि वह नवकोटि प्रत्याख्यान है। उसमे किसी भी प्रकार के अप्रत्याख्यान के अश की छूट नही है। शेप भग अपूर्ण है, अर्थात् उनमे किसी न किसी रूप मे अप्रत्याख्यानाश की छूट रह जाती है।

★



२५

बोल पच्चीसवाँ : चारित्र पाँच

१ सामायिक चारित्र
२ छेदोपस्थापन चारित्र
३ परिहार विशुद्धि चारित्र
४ सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र
५ यथाख्यात चारित्र

व्याख्या

आत्मा को निज स्वरूप मे स्थित रखने का प्रयत्न चारित्र है। चारित्र, विरति, संयम, और सवर ये सब एकार्थक शब्द हैं। चारित्र का अर्थ है—अशुभ से निवृत्ति और शुभ मे प्रवृत्ति। तत्वत: आस्रव के निरोध को चारित्र कहा जाता है।

शास्त्रीय भाषा में चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से, उपशम से और क्षयोपशम से होने वाले विरति परिणाम को चारित्र कहते हैं। अथवा आत्मा का सावद्य योग से निवृत्त होकर निरवद्य योग में प्रवृत्त होना भी चारित्र कहा जाता है। चारित्र के सामायिक आदि पाँच भेद हैं।

सामायिक चारित्र—सामायिक अर्थात् सम-भाव। सम भाव की साधना को सामायिक चारित्र कहते हैं। अथवा सावद्य